

सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बीकानेर

चट्टान और सपना

ाजा अहमद अब्बास

प्रकाशक :
सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बिस्सों का चौक,
बीकानेर
संस्करण : प्रथम, 1986
मूल्य : बत्तीस रुपये मात्र
मुद्रक :
विकास आर्ट प्रिंटर्स,
रामनगर, शाहदरा, दिल्ली-32

CHATTAN AUR SAPNA
Story collection by
Khwaja Ahmad Abbas
Price Rs 32.00

क्रम

मेरी ज़िन्दगी का पहला मोड़

मेरी ज़िन्दगी का पहला मोड सचमुच सडक का एक मोड ही था। जलियाँवाला बाग वाले कत्लेआम से अगले बरस की बात है। शायद मेरी उमर उस वक्त पाँच बरस की होगी। मगर उस घटना का चिह्न अब तक मेरे दिमाग पर मौजूद है।

मैं अब भी उसी दृश्य को अपनी कल्पना में देख सकता हूँ।

हमारे कस्बे में छ:-सात स्कूल थे। दो हाईस्कूल। हर स्कूल मे सौ-दो सौ लड़के पढ़ते थे। ये सब हजार-बारह सौ लड़के, जो पाँच बरस से सोलह बरस की उमर के थे, इस वक्त सडक के दोनो तरफ खड़े थे। इस सड़क को हम 'सड़के आज़म' कहते थे। अनपढ़ लोग 'जरनैली सड़क' कहते थे। जो थोड़ी-बहुत अंग्रेजी जानते थे वह 'ग्रैंड ट्रंक रोड' कहते थे। सुना था इस सडक को शेरशाह सूरी ने बनवाया था। यह भी सुना था कि यह सडक पेशावर से लेकर कलकत्ता तक जाती है।

हजार-बारह सौ लड़के सडक के किनारे दोनो तरफ खडे थे। खडे नही थे, खड़े किए गये थे। लाहौर से गवर्नर का हुक्म अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर को आया था। डिप्टी कमिश्नर साहब ने अपने ज़िले के सब तहसीलदारों को हुक्म दिया था। पानीपत के तहसीलदार ने थानेदार को हुक्म दिया था। थानेदार ने सब स्कूलों के हेडमास्टरों को बुलाकर हुक्म दिया था कि अगले दिन सब स्कूलों के लड़के सुबह छ: बजे शहर के बाहर जरनैली सडक के दोनों तरफ बाकायदा लाइन बनाकर खड़े हो जाएँ।

उस वक्त दिन के बारह बजे थे। गर्मी के दिन थे। छः घण्टे से हम खड़े थे। हमारी टाँगें थक गई थीं। मैं कभी एक टाँग पर खड़ा होता था, कभी दूसरी पर। कभी उत्तर की तरफ नजर करता था जिधर से सुना था अंग्रेजी घुड़सवार फौज आने वाली है। मगर सड़क थोड़ी दूर आगे जाकर मुड़ गई थी। हमारी नजर मोड़ के आगे नहीं जा सकती थी, मगर थोड़ी-थोड़ी देर बाद हर लड़का एक नजर उधर डाल लेता था जिधर से फौजी रिसाला आने वाला था। उस नजर में एक अनजाना भय भी था और लड़कपन का शौक भी था और मोड़ के उधर क्या है उसकी एक अजीब कशिश भी थी। उस सड़क के मोड़ की अहमियत का एहसास हमें बहुत बाद में हुआ। लेकिन हममें से कितनों के लिए यह जिन्दगी का पहला मोड़ था।

आखिरकार जिस घड़ी का इन्तज़ार था वह आ ही गई। पहले तो कुछ नजर नहीं आया। सिर्फ करीब आती हुई एक आवाज़ सुनाई दी जैसे दूर कहीं बादल गरज रहे हों। फिर आवाज साफ होती गई। हज़ारों घोड़ों की टापों की आवाज के साथ लोहे की रकाबों, बूटों, जंजीरों, बन्दूकों और नेज़ों के आपस में टकराने की आवाज भी थी। फिर आवाज और करीब आती गई। अब हम किसी कदर सहमे हुए उस मोड़ की तरफ देख रहे थे। पहले धूल उड़ी। फिर उस धूल के बादल में से एक अंग्रेज अफसर घोड़े पर सवार नजर आया। उसके पीछे पूरा रिसाला था। पहले अंग्रेज अफसर थे। फिर अंग्रेज सिपाही थे। हर एक खाकी वर्दी पहने, पेटियों में पिस्तौल लगाए, घोड़ों की रकाबों में उलटी रायफलें रखी हुई। उनके पीछे तोपों की गाड़ियाँ थीं, जिनको खच्चर खींच रहे थे। फिर हिन्दुस्तानी फौज। यह भी घुड़सवार थे। कल्फ-किए खाकी साफे। ऊँचे तुर्रे। पंजाबी, बलोच, सिख, जाट, फिर अंग्रेज सिपाही। जैसे हिन्दुस्तानी सिपाहियों को आगे-पीछे से घेरे हों।

यह ब्रिटिश साम्राज्य की फ़ौजी सत्ता का प्रदर्शन था। तोपें, बन्दूकें, राइफलें मशीनगनें, तलवारें, संगीनें, पिस्तौल, रिवाल्वर, लाल मुँहवाले अंग्रेज अफसर और सिपाही। काले और साँवले हिन्दुस्तानी फौजी। इस परेड का यही मकसद था कि बच्चों के दिल

में साम्राजी फौज का आतंक बिठा दिया जाए।

और वाकई पहले तो ऐसा ही हुआ। लाल-लाल मुंहवाले अंग्रेजों और बड़ी-बड़ी तोपों को देखकर बच्चे सब सहम-से गए। चुपचाप फटी-फटी नजरों से उनको देखते रहे। एक लड़के का तो डर के मारे पेशाब निकल गया। रिसाला गुजरता रहा। फिर हिन्दुस्तानी सिपाहियों के बाद के दूसरे अंग्रेज अफसर और 'टामी' आए तो उनके लाल-लाल मुँह (जो धूप में और भी चमक रहे थे) को देखकर एक लड़के ने दूसरे के कान में कहा, "लाल मुँह वाले बन्दर।" दूसरे ने तीसरे के कान में कहा, यहाँ तक कि यह खुसफुसाहट एक लड़के से दूसरे तक होती हुई लाइन के आखिर तक पहुँच गई। अब लड़कों के आतंक में कुछ कमी हो गई थी। भय का स्थान एक तिरस्कारपूर्ण मज़ाक ने ले लिया था। फिर हमने देखा कि अंग्रेज घुड़सवार 'टामी' एक यूनीफार्म पहने हुए आ रहे हैं। बिलकुल औरतों जैसे घाघरे। नंगी पिंडलियाँ। उनको देखकर लड़के मुस्करा दिए। कुछ हँस भी दिए। मास्टरों ने घूरा। फिर डाँटा भी। मगर लड़कों को अपनी हँसी रोकना मुश्किल हो गया। हरियाने की लोकभाषा में एक ने दूसरे के कान में कहा, 'यह तो लुगाइयाँ (औरतें) लगते हैं।'

तीन घंटे बाद जब परेड खत्म हुई और फ़ौजी रिसाले की टापों ने उड़ाई हुई सिर्फ धूल रह गई तो थके-हारे, भूखे-प्यासे लड़कों ने घर का रुख किया भगदड़-सी मच गई। मगर साम्राजी प्लान नाकाम हो गया था। इस फौजी ताकत के प्रदर्शन से वह हिन्दुस्तानी बच्चों के दिलों में आतंक न बिठा सके थे। केवल घृणा और तिरस्कार का भाव पैदा कर सके थे। और-घर लौटते हुए कुछ मनचले लड़कों ने उस समय का मशहूर मज़ाकिया नारा लगाया, जिसे सबने ही चिल्ला-कर दोहराया।

"बोल गई माई लार्ड। कुकड़ू कूँ।"

"बोल गई माई लार्ड। कुकड़ू कूँ।"

और इसके बाद लड़कों का एक और कोरस :

"ए, बी, सी, डी। कहाँ गई थी?

मर गया अंग्रेज। मैं रोने गई थी।"

ऐसी ही एक परेड पंजाब के एक और शहर में हुई थी। नतीजा यह हुआ कि एक हिन्दुस्तानी बच्चे के दिल में अंग्रेजी साम्राज्य के लिए ऐसी घृणा बैठ गई कि बड़ा होकर आतंकवादी क्रान्तिकारी बन गया। उसका नाम था भगतसिंह जिसने सबसे पहले 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाया था। हजारों और बच्चों ने बड़े होकर किसी अंग्रेज पर पिस्तौल तो नहीं चलाई। मगर उनके दिलों में भी इन्कलाबी सयासी ख़यालात पलते रहे, पकते रहे। उनमें से एक मैं भी था और यह मोड़, जिसके पीछे से अंग्रेजी फौज दिखाई दी थी यह मेरी जिन्दगी का पहला मोड़ था जिसने मेरे अचेतन मन में इन्कलाब पैदा कर दिया।

उस जमाने के स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की दिमागी पहुँच सिर्फ सरकारी नौकरी तक थी। कोई थानेदार होने के स्वप्न देखता था, कोई तहसीलदार। बहुत उड़ान की तो कलक्टर या कमिश्नर होने की तमन्ना कर ली। वरना आख़िर में सरकारी दफ्तर की क्लर्की तो सबको करनी थी।

लेकिन उस परेड को देखने के बाद मेरे दिल में अंग्रेजों की नौकरी के लिए एक नफरत-सी बैठ गई। "कुछ भी करूँगा। गवर्नमेण्ट सर्विस नहीं करूँगा।" मेरी तरह सैकड़ों ने अपने दिल में तय कर लिया। जैसे-जैसे मैं बड़ा होता गया यह ख़याल पक्का होता गया।

पहले मैं डॉक्टर बनना चाहता था, क्योंकि कौमी तहरीक के कितने ही लीडर डॉक्टर थे। जैसे डॉक्टर अनसारी। डॉक्टर बी॰ सी॰ राय वगैरा। लेकिन जब ज्योलोजी क्लास में मेंढक की चीर-फाड़ का वक्त आया तो मैं वहाँ से भागा। डॉक्टरी का ख़याल छोड़कर इंजीनियरिंग का सोचा। चन्द रोज मैथेमैटिक्स क्लास में गुजारे। लेकिन Differential calculus और Trignometry से डरकर वहाँ से भी भागा और आर्ट्‌स का कोर्स लिया। हिस्ट्री और इकनामिक्स। यही मजमून थे जो उस वक्त के सियासी रुझानात की तरजमानी करते थे। मगर हमारा ज्यादा वक्त इन्कलाबी लिटरेचर पढ़ने में सर्फ

होता था। क्लास में भी इकनामिक्स की किताब के अन्दर आइरिश इंकलाब या इन्कलाबे रूस की तारीख़ रखकर पढते थे। पॉलिटिक्स में दिलचस्पी के बायस ही यूनियन की डिबेट्स में हिस्सा लेना शुरू किया। फिर यूनिवर्सिटी मैगजीन मे लिखना शुरू किया। यूनिवर्सिटी से ही अपना साप्ताहिक परचा निकाला—Aligarh opinion। फिर देहली और बम्बई के कौमपरस्त अखबारों में लिखना शुरू किया। फिर अफसाने लिखे। फिर किताबें—हश्र क्या हुआ आपको मालूम है।

मगर मैं अक्सर सोचता हूँ अगर जिन्दगी के उस पहले मोड पर वह अंग्रेज़ी फौज का भयानक रिसाला न आता तो आज ख्वाजा अहमद अब्बास क्या होता? किसी दफ्तर का हैड क्लर्क, कोई छोटा-मोटा मजिस्ट्रेट या किसी गवर्नमेण्ट हाईस्कूल का हेडमास्टर? मगर उस मोड़ पर तो उस अंग्रेज़ी साम्राज्य की किसी-न-किसी निशानी को नमूदार होना ही था। फौज न होती, कुछ और होता। इसलिए कि वह सिर्फ मेरी ज़िन्दगी का पहला मोड़ नही था, वह तारीख का मोड़ था। और तारीख के हर मोड़ पर लाखों-करोड़ो आदमियों की ज़िन्दगियाँ बदल जाती हैं।

वापसी का टिकट

इंसान ने इंसान को कष्ट पहुँचाने के लिए जो विभिन्न यन्त्रों और साधनों का आविष्कार किया है, उनमें सबसे खतरनाक है—टेलीफोन !

साँप के काटे का तो मंतर हो सकता है, मगर टेलीफोन के मारे को तो पानी भी नहीं मिलता।

मुझे तो रात-भर इस कमबख्त के डर से नींद नहीं आती कि सुबह-सवेरे न जाने किसकी मनहूस आवाज सुनाई देगी। दो-ढाई बजे आँख लग भी गई तो सपने में क्या देखता हूँ कि सारी दुनिया की घंटियाँ, घंटे और घड़ियाल एक साथ बजने शुरू हो गए हैं—मन्दिरों के बड़े-बड़े पीतल के घण्टे, पुलिस के थाने का घड़ियाल, दरवाजों की बिजली वाली घण्टियाँ, साइकिलों की ट्रिन-ट्रिन, फायर इंजनों की टनंग टनंग और जब आँख खुलती है तो मालूम होता है कि टेलीफोन की घण्टी बज रही है। इस असमय रात को किसका फोन आया है ? जरूर ट्रंक-काल होगी ! पल-भर में न जाने कितने वहम दिल धड़काते हैं। एक दोस्त मद्रास में बीमार है, एक रिश्तेदार लन्दन और बम्बई के बीच हवाई जहाज में है। भतीजे का मैट्रिक का नतीजा निकलने वाला है।···

मैं फोन उठाकर कहता हूँ, "हैलो !"

दूसरी तरफ से घबराई हुई आवाज़ आती है "चुन्नीभाई—केम छो ?"

मैं कहता हूँ कि यहाँ न कोई चुन्नीभाई हैं न केमछो।

मगर वह कहता है, "चुन्नीभाई, टाटा डैफर्ड ऊपर जा रहा है।"

मैं कहता हूँ, "जाने दो।"

वह गुजराती में गाली देकर कहता है, "कैसे जाने दूँ ? ब्रिटिश इलेक्ट्रिक के सौदे में पहले ही घाटा खा चुके हैं।"

"मैं समझाता हूँ कि, देखो, भाई, मैं चुन्नी भाई नहीं हूँ।"

"ओह !" उधर से आवाज आती है, जैसे टायर में से एकदम हवा निकल गई हो, "तुम चुन्नी भाई नथी छो ?"

मैं पूछता हूँ, "आपको कौन-सा नम्बर चाहिए ?"

वह कहता है, "ऐट-सेविन-ऐट-सिक्स-सिक्स।"

मैं कहता हूँ, "यह तो ऐट-सिक्स-ऐट-सेविन-सेविन है।"

वह कहता है डाँटकर, "तो पहले ही क्यों नहीं बोलते रौंग नम्बर ?"

मैं कहता हूँ, "अच्छा भाई, मेरा ही दोष है। अब क्षमा करो।" और फोन रख देता हूँ, और नींद को वापस बुलाने के लिए भेड़ें गिनना शुरू कर देता हूँ।

और फिर सुबह उठकर तो टेलीफोन की घण्टी बजने का क्रम ही शुरू हो जाता है।

"आप मुझे नहीं जानते। मैं आपके पुराने वतन पानीपत के पास जो कस्बा है रियाड़ी वहाँ से आया हूँ—फिल्म कम्पनी में हीरो बनने···"

"मुझे आपसे एपाइंटमेंट चाहिए, अपनी कहानियाँ सुनाना चाहता हूँ···"

"अगले इतवार को हमारी सभा का वार्षिक उत्सव और कवि सम्मेलन है। आपको आना ही पड़ेगा। आपके नाम की घोषणा पहले ही कर चुके हैं···"

"पत्रिका प्रेस में रुकी पड़ी है, केवल आपके लेख का इंतजार है···"

"देखिए आप मुझे नहीं जानते, लेकिन क्या आप मुझे कृपा करके राजकपूर का एड्रेस दे सकते हैं ?···"

उस सवेरे की बात है कि यही क्रम चल रहा था कि एक बार फोन की घण्टी बजी। मैंने हिम्मत करके फोन उठाया।

"हैलो!" मैंने कहा, हालांकि टेलीफोन की डायरेक्टरी आदेश करती है कि हैलो मत कहो।

"हैलो!" दूसरी तरफ से बड़े ही यूरोपियन अन्दाज की आवाज आई। मैं समझा कि कोई अमरीकन या अंग्रेज बोल रहा है।

फिर उसने अंग्रेजी में पूछा, "क्या मैं ख्वाजा अहमद अब्बास से बात कर सकता हूं?"

मैंने अंग्रेजी में जवाब दिया, "मैं अब्बास ही बोल रहा हूं, कहिए, कौन साहब बोल रहे हैं?"

एकाएक फोन के दूसरे सिरे पर अंग्रेजी हिन्दुस्तानी में बदल गई, मगर लहजा विलायती ही रहा, जैसे कोई इंगलिस्तान में पढ़कर दस बरस बाद हाल ही में लौटा हो, "क्यों, भाई, मेरी आवाज पहचान सकते हो?"

"मैंने संकोचवश झूठ बोला, आवाज तो आपकी जानी-बूझी मालूम होती है, लेकिन क्षमा कीजिएगा…"

उसने मेरी बात काटकर कहा, बड़े संकोच-रहित ढंग से, मगर लहजा वही विलायती रहा। ऐसा लगता था, जैसे कोई अंग्रेजी फौज का करनल हिन्दुस्तानी बोल रहा हो, "छोड़ो, यार, तुम मेरी आवाज पूरे पच्चीस बरस बाद सुन रहे हो। आखिरी बार हम लखनऊ में मिले थे, उन्नीस सौ छत्तीस में।"

न जाने कैसे मेरे दिमाग में एक घण्टी-सी बजी। मैंने कहा, "बिरजेन्द्र कुमार सिंह? बिरजू?"

उधर से आवाज आई, "राइट बिरजू!"

"बिरजू!" मैंने खुशी में चिल्लाकर कहा, "कहो, भई, इतने दिनों कहाँ रहे, क्या करते रहे? आजकल क्या करते हो?"

टेलीफोन पर भी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे दूसरी तरफ जवाब देने से पहले उसने एक लम्बी ठण्डी सांस ली हो। जब वह बोला तो उसकी आवाज बिलकुल ही बदली हुई थी, जैसे एकदम किसी गहरी

फिक्र मे डूब गई हो, "यह सब एक लम्बी कहानी है। क्या मैं तुमसे अभी मिलने आ सकता हूँ ?"

मैंने कहा, "मैं तो शहर से बहुत दूर जुहू में रहता हूँ। मगर हर रोज़ दोपहर को मैं शहर आता ही हूँ। ऐसा क्यों न करें, किसी रेस्तराँ में इकट्ठे लंच खाएँ। अब यहाँ बम्बई मे भी तुम्हारा लखनऊ की तरह एक 'मेफेयर' रेस्तराँ खुल गया है।"

"मेफेयर ?" उसने रेस्तराँ का नाम ऐसे दोहराया, जैसे किसी ने अचानक उसके चुटकी ले ली हो, "नहीं-नहीं, मैं तुमसे किसी रेस्तराँ मे नहीं मिलना चाहता। वहाँ बहुत-से लोग होते हैं। हम आराम से बात नहीं कर सकेंगे।"

"अच्छा," मैंने कहा, "तो तुम यहाँ ही आ जाओ, मैं तुम्हारा इंतज़ार करूँगा, कितने बजे आओगे ?"

"जितनी देर में टैक्सी को चर्चगेट से जुहू पहुँचने मे टाइम लगेगा।"

"कोई चालीस-बयालीस मिनट···मैं अपने बरामदे में खड़ा मिलूँगा।" फिर मुझे कुछ याद आया और मैंने कहा, "अरे भाई लक्ष्मी भी साथ है तो उसे भी लेते आना—भाभी के दर्शन"···एक वाक्य फिर मेरे दिमाग मे गूँजा और मैंने कहा, "हम तुम्हारे रकीब नहीं है, यार।"

मगर उधर से कोई जवाब नहीं आया, टेलीफोन का सिलसिला पहले ही कट चुका था।

अगले पैंतालीस मिनट तक पच्चीस बरस पुरानी तस्वीरें मेरे दिमाग में उभरती रहीं।

विरजू···
विरजेन्द्र···
विरजेन्द्र कुमार सिंह···
कुँवर विरजेन्द्र कुमार सिंह···

बिरजू...

हमारा यार बिरजू...

बिरजू दि ब्यूटिफुल...

बिरजू दि ब्रिलियेंट...

बिरजू, जो खूबसूरत था, डीलडौल वाला था, बुद्धिमान था, टेनिस का चैम्पियन था और यूनियन में सबसे अच्छा भाषण करता था...

बिरजू जिसके पीछे दरजनों लड़कियाँ दीवानी थीं...

हाईकोर्ट के जज जस्टिस गर रमन सक्सेना की बेटी, आशा सक्सेना, जो आई० टी० कॉलिज में पढ़ती थी...

डॉ० सतीश बनर्जी की लड़की करुणा, जिसकी खूबसूरत बंगाली आँखें जैमिनी राय की किसी तस्वीर में चुराई हुई लगती थीं...

प्रोफेसर हामिदअली की छोटी बहन सुरैया साजिदअली, जिसने करामत हुसैन गर्ल्स कॉलिज का परदे वाला वातावरण छोड़कर युनि-वर्सिटी में उसी साल दाखिला लिया था और जो हर डिबेट और ड्रामे में यूनियन हॉल में सबसे आगे बैठती थी, ताकि बिरजू को दिल भरकर देख सके...

सरला माथुर, जो हिन्दी में एम० ए० कर रही थी और कविता लिखती थी और जिसकी हर कविता में बिरजू का रूप ही झलकता था...

सिलविया टामसन, जो स्टेशन मास्टर की लड़की थी और रेलवे क्लब के हर डांस में बिरजू को दावत देने खुद उसके होस्टल जाती थी, हालांकि वहाँ लड़कियों का आना-जाना मना था...

बिरजू...

वाकई वह कितना ईर्ष्या-योग्य इंसान था !

पहली बार जब उससे मेरी मुलाकात हुई, तो वह अलीगढ़ युनिवर्सिटी की आल इण्डिया डिबेट में भाग लेने लखनऊ युनिवर्सिटी की तरफ से आया था।

पच्चीस बरस बाद भी मुझे उससे वह पहली मुलाकात अच्छी

तरह याद थी। मैं अपनी युनिवर्सिटी यूनियन की तरफ से आने वाले मेहमानों का स्वागत करने के लिए स्टेशन गया था। उस ट्रेन मे लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस और कानपुर कॉलिजो के डिबेटर आये थे। कुल मिलाकर वे ग्यारह-बारह या चौदह थे। लेकिन उन सबमे एक सबसे अनोखा था। न केवल इसलिए कि सबसे ज्यादा डीलडौल वाला था और बन्द गले और पूरी आस्तीन के स्वेटर मे उसका कसरती बदन अपोलो की प्रतिमा की तरह गठा हुआ और सुडौल था, बल्कि इसलिए भी कि उसके चेहरे पर एक अजीब मासूम मुस्कराहट थी। और जब मैंने उससे हाथ मिलाया तो उसके शेक-हैंड मे बडी आत्मीयता और गरमी थी, जिससे मालूम होता था कि हम लोगो से मिलकर उसे वाकई बडी खुशी हुई है। उस एक पल ही मे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे हम दोनों बड़े पुराने दोस्त हैं और बरसों से एक-दूसरे को जानते हैं।

फिर आल इण्डिया डिबेट हुई। भाषण प्रतियोगिता का विषय था—'सामाजिक जागरण के बिना राजनीतिक आज़ादी काफी नही है।'

मैं इस विषय के विरोध मे बोला था। अपने भाषण मे मैंने साम्राज्य के विरुद्ध और निजी स्वतन्त्रता के आन्दोलन के समर्थन मे बहुत भावपूर्ण भाषण दिया और उन लोगो को खूब लताड़ा जो स्वतन्त्रता संग्राम की कुरबानियों और खतरों मे बचने के लिए समाज-सुधार के कृत्रिम आवरण में शरण खोजते हैं। मेरा भाषण समाप्त हुआ तो खूब जोर की तालियाँ बजी और मैं यही समझा कि मैंने मैदान मार लिया।

मेरे बाद लखनऊ युनिवर्सिटी के बिरजेन्द्र कुमार सिंह का नाम पुकारा गया। अब वह सफेद फलालेनी पतलून पर बन्द गले का स्याह जोधपुरी कोट पहने हुए था और इसमे कोई शक नही कि इन वस्त्रो मे वह बहुत जँच रहा था। अभी उसने भाषण शुरू भी नही किया था कि ऊपर गैलरी मे जहाँ चिकों के पीछे गर्ल्स कॉलिज की लड़कियाँ बैठी हुई थीं, दिलचस्पी की एक सरसराहट-सी दौड़ गई और चिकों के बीच

मे मे स्याह, ख़ूबसूरत आँखें और रंगीन आँचल झिलमिलाने लगे।

"मिस्टर प्रेसीडेंट!"

उसने बिलकुल शुद्ध अंग्रेजी ढंग मे भाषण देना शुरू किया—

"मुझसे पहले मेरे दोस्त ने जब अपना भाषण समाप्त किया तो सबने उत्साहपूर्वक तालियाँ बजायी, मैंने भी। वह भाषण ही इतना जोरदार था। मेरे विचार मे सर्वोत्तम भाषण देने के लिए इनाम मेरे इस दोस्त ही को मिलना चाहिए, इसलिए कि इतने कमज़ोर विषय को इतनी ख़ूबसूरती और इतने ज़ोर-शोर से पेश करना वाक़ई बहुत बड़ा कारनामा है···"

और इससे पहले कि मैं यह फ़ैसला कर सकूँ कि यह वास्तव में मेरी प्रशंसा कर रहा है, उसने मेरी तरफ़ मुड़कर देखा और मुस्करा कर कहा—

"मुझे विश्वास है कि मेरे दोस्त एक बहुत सफल वकील साबित होंगे···"

और इस पर सारे हॉल में इतने ज़ोर की हँसी गूँजी कि उसकी लहरों मे मेरे तमाम ज़ोरदार विचार बह गए।

उसे डिबेट मे प्रथम पुरस्कार मिला, मुझे दूसरा। वह तीन दिन अलीगढ़ ठहरा पहले दिन वह 'मिस्टर बिरजेन्द्रकुमार सिंह' था; दूसरे दिन 'बिरजेन्द्र' हो गया और तीसरे दिन केवल 'बिरजू' रह गया। जब हृदयों और विचारों का धरातल एक हो तो परायेपन के फ़ासले कितनी जल्दी दूर हो जाते हैं।

स्टेशन पर जब मैं उसे छोड़ने गया तो मैंने उससे पूछा, "बिरजू, यह बात कि सामाजिक जागरण राजनीतिक स्वतन्त्रता से अधिक आवश्यक है, तुमने ऐसे ही डिबेट की खातिर इतने ज़ोर-शोर से कही या तुम वास्तव मे इसमें विश्वास रखते हो?"

पच्चीस-छब्बीस बरस के बाद भी उसका जवाब मेरे कानों मे गूँज रहा था। उसने कहा था, "सुनो! देशों और जातियों की स्वतंत्रता जरूरी है, लेकिन वह उतनी मुश्किल नहीं है। सामाजिक क्रान्ति, जो हमारे दिमागों को सदियों की गुलामी से आज़ाद करे, वह मुश्किल

काम है। और जब तक हमारे दिमाग आज़ाद नहीं होंगे, हमारे देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता अधूरी रहेगी।"

फिर उसने बड़े पते की बातें की थी, "मान लो, हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया और हमारे-तुम्हारे दिमाग धार्मिक अन्धविश्वासों और साम्प्रदायिकता की भावना और घृणा के बन्धनों से आज़ाद न हुए तो जरा सोचो, क्या होगा ? इतने बरसों की शिक्षा और समाज-सुधार की बातें करने के बाद भी हम पढ़े-लिखे हिन्दुओं में से कितने हैं, जिन्होंने अपने दिमागों को पूरी तरह जात-पाँत के बन्धनों से आज़ाद कर लिया है.? तुम मुसलमानों में कितने हैं, जो सचमुच शेख, सैयद, मुगल, पठान, जुलाहे और कुम्हार को बराबर समझते हैं ?"

तब मैंने उससे पूछा, "और बिरजू तुम ? क्या तुम्हारा दिल और दिमाग इन बन्धनों से आज़ाद है ? क्या तुम बड़े खानदान के राजपूत होकर एक अछूत लड़की से ब्याह कर सकते हो, या किसी वेश्या की पुत्री को अपनी पत्नी बना सकते हो ?"

उसने मेरी आँखों में आँखें डालकर कहा था, "अगर मुझे उससे प्रेम है, तो जरूर कर सकता हूँ और समय आया तो करके दिखा दूँगा।"

और फिर उसकी ट्रेन आ गई और वह लखनऊ वापस चला गया।

उसके बाद हम एक और आल इण्डिया डिबेट के सिलसिले में बनारस में मिले थे। और सारनाथ के खण्डहरों में साथ घूमे थे और बिरजू ने मुझे महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाएँ सुनाई थी और कहा था, "अगर धर्म और मज़हब के ख़याल से मैं उकता न गया होता तो जरूर बुद्ध की शरण चला जाता।"

"जानते हो, महात्मा बुद्ध का देहान्त कैसे हुआ ?" उसने म्यूजियम में महात्मा बुद्ध की शान्त और मुसकराती हुई मूर्ति के सामने खड़े होते हुए मुझसे कहा था, "वह एक गरीब अछूत के यहाँ भीख माँगने गये और बेचारे के घर में केवल सड़ा हुआ सूअर का मांस था, वही उसने उनकी झोली में डाल दिया और यह जानते हुए भी कि

यह मांस सड़कर विषैला हो चुका था, उन्होंने उसे खा लिया। प्राण दे दिए, मगर किसी गरीब अछूत का दिल नहीं तोड़ा!"

फिर जब हम यही बातें सोचते हुए मार्ग में शहर वापस हो रहे थे, हमने दीवारों पर 'देवदास' फिल्म के इश्तहार लगे देखे थे और बिरजू ने कहा था, "और एक भाई देवदास थे कि पारबती को तो मँझधार में छोड़ा ही था, चन्द्रा का दिल भी तोड़ दिया। शायद वे समुद्र में डूब गए, मगर समाज ने इन्सानों के बीच जो खाइयाँ खोद रखी हैं, उनको पार न कर सके।"

मैंने कहा था, "देवदास कोई काल्पनिक फिल्मी नायक नहीं था। शरत बाबू ने एक मामूली इन्सान का चित्रण किया है, जो समाज के मुकाबले में हमारी-तुम्हारी तरह कमजोर था।"

और उसने कहा था, "तुम्हारी तरह कमजोर होगा, अगर ऐसी परिस्थिति मेरे सामने प्रकट हुई तो मैं कमजोर साबित नहीं होऊँगा।"

उस रात हम बनारस से विदा हो रहे थे। हमारी ट्रेनें आधी रात के बाद रवाना होने वाली थीं। मेरी ट्रेन डेढ़ बजे और बिरजू की पौने तीन बजे। डिबेट के लिए और जितने विद्यार्थी अलग-अलग युनिवर्सिटियों से आये थे, वे सब जा चुके थे। सिर्फ मैं और बिरजू रह गए थे, और हमारी देख-भाल करने के लिए बनारस युनिवर्सिटी का एक एम० ए० का विद्यार्थी था, गोविन्द सक्सेना।

खाने के बाद हम बातें कर रहे थे कि गोविन्द ने कहा, "ट्रेन में तो अभी कई घण्टे हैं, चलिए आप लोगों को गाना सुनवा दें।"

मैंने उस वक्त तक कभी किसी वेश्या का गाना नहीं सुना था। बनारस की गानेवालियों की बड़ी तारीफ सुनी थी कि पक्के गाने, दादरा और ठुमरी में उनका जवाब नहीं। सो मैंने कहा, "यह अच्छा खयाल है। चलो, बिरजू।"

मगर उसने कहा, "छोड़ो जी, अच्छी-खासी यह गपशप कर रहे हैं। वहाँ कोई मोटी, काली, भद्दी बाईजी पान खा-खाकर पक्का गाना सुनाएँगी और हमें बोर करेंगी।"

इस पर गोविन्द बोला, "तुम लखनऊ वाले समझते हो कि

लखनऊ के चौक के वाहर सौन्दर्य कही है ही नही । अरे, एक वार लक्ष्मी को देख भी लोगे तो न जाने लखनऊ की कितनी रेलें निकल जाएँगी !"

मगर बिरजू नही माना, "तुम्हारी लक्ष्मीवाई तुम बनारस वालों को मुवारक ! और सच्ची वात यह है कि कोठेवालियों का गाना सुनने में अपने को कोई दिलचस्पी नही है ।"

और मुझे कहने का अवसर मिल गया, "क्यो, समाज-सुधारकजी, वेश्या के घर जाते हुए डर लगता है क्या ?"

बिरजू को कहना ही पड़ा, "डर तो मुझे शैतान के घर जाते हुए भी नही लगता !" और सो, हम लोग ताँगा लेकर लक्ष्मी के कोठे के लिए रवाना हो गए ।

इतने बरसो के बाद भी लक्ष्मी की सूरत को मैं न भूला था । छोटा-सा, बूटा-सा कद, गदराया हुआ शरीर, गोरी तो नही मगर सुनहरी रंगत, घने-लम्बे बाल, जिनको दो चोटियो मे गूँथा हुआ था, बड़ी-बड़ी आँखें और बोझल-लम्बी पलकें; लाली-लगे होठ, जिन पर एक अजीब-सी, उदास-सी मुस्कराहट खेल रही थी; छोटी-सी मगर बड़ी सुन्दर-सी नाक, जिसमे हीरा-जड़ी एक छोटी-सी नथनी पड़ी हुई थी । गोविन्द ने मेरे कान मे कहा, "इस नथनी को उतारने के लिए एक जागीरदार साहब पचास हज़ार तक पेश कर चुके है ।"

मुजरा शुरू हुआ । हमे मानना पड़ा कि लक्ष्मी जितनी सुन्दर है, उतनी ही सुरीली उसकी आवाज है । ठुमरी के बाद दादरा, और दादरे के बाद गजल । गोविन्द की फ़रमाइश पर एक-आध फिल्मी गीत भी हुआ । महफ़िल मे कितने ही लोग थे जो भूखी निगाहो से लक्ष्मी को घूर रहे थे, लेकिन मैंने देखा था कि खुद लक्ष्मी की निगाहे बिरजू के चेहरे पर जमी हुई है ।

और धीरे-धीरे महफिल बिखरती गई । अपनी-अपनी जेबें खाली करके लोग उठते गए । फिर केवल हम लोग ही रह गए । मैंने घड़ी देखी । साढे वारह वज रहे थे । मैंने कहा, "मेरी गाड़ी का तो वक्त हो गया, चलो, भई गोविन्द ।"

गोविन्द मेरे साथ उठ खड़ा हुआ, लेकिन जब बिरजू ने उठना चाहा तो लक्ष्मी ने अपना मेंहदी लगा, छोटा-सा, नरम-सा हाथ उसके कठोर टेनिस खेलने वाले हाथ पर रख दिया, "आपको हमारी कसम है, कुंवर साहब ! लखनऊ की गाड़ी में तो अभी बहुत देर है।"

बिरजू ने हैरान होकर पहले मेरी तरफ देखा। फिर गोविन्द की की तरफ और फिर लक्ष्मी की तरफ, जिसका हाथ अब तक उसके हाथ पर रखा था। मुझे ऐसा लगा कि वह हमारे साथ उठना भी चाहता है और लक्ष्मी को निराश करना भी नहीं चाहता।

मैंने अंग्रेज़ी में कहा, शाम की बातचीत की याद दिलाते हुए, "दिस मीट इज प्वाइजन्ड (इस गोश्त में ज़हर है) !"

बिरजू ने भी अंग्रेज़ी में जवाब दिया, "आइ नो, बट बैटर टू टेक प्वाइजन दैन हर्ट सम वन्स फीलिंग्स (जानता हूँ मगर किसी का दिल दुखाने से ज़हर खा लेना अच्छा है) !"

"तो चलो, गोविन्द, हम चलते हैं," मैंने किसी कद्र चिढ़कर कहा। मुझे ऐसा लग रहा था कि मेरा एक घनिष्ठ मित्र एक गन्दी नाली में गिर पड़ा है और वहाँ से निकलना नहीं चाहता।

"अच्छा तो फिर अगले साल लखनऊ की डिबेट में मिलेंगे," बिरजू ने मुझसे सन्धि करने के लिए आवाज़ दी मगर मैंने कोई जवाब नहीं दिया। बिरजू का जो कल्पना में चित्र मैंने बनाया था, उस क्षण में वह चकनाचूर हो गया था। मुझे नहीं मालूम था कि सामाजिक क्रान्ति पर भाषण करने वाला बिरजू, महात्मा बुद्ध के पवित्र मार्ग पर चलने वाला बिरजू एक मामूली रंडीबाज़ निकलेगा।

गुस्से में भरा मैं ज़ीने से उतर ही रहा था कि आवाज़ आई, "सुनिए !"

मुड़कर देखा तो लक्ष्मी थी। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था और उसके होंठों के किनारे काँप रहे थे।

"मैंने आपके दोस्त को रोक लिया," वह बोली, "उसके लिए मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया और मुड़कर जाने लगा। इस बार

उसकी आवाज में तीर की-सी तेजी थी, "जाने से पहले यह सुनते जाइए कि मैं अंग्रेजों समझती हूँ। अगर मैं जहरीला गोश्त हूँ तो कभी यह भी सोचिएगा कि मेरे जीवन में यह विष किसने घोला है!"

मैं कोई जवाब न दे सका और वहाँ से चला आया।

अगले बरस जब मैं लखनऊ आल इण्डिया डिबेट में गया तो मैं इस घटना को प्रायः भूल चुका था। युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों का किसी वेश्या के कोठे पर गाना सुनने जाना या वहाँ रात-भर के लिए ठहर भी जाना कोई ऐसी आश्चर्यजनक घटना ही नहीं कि उस पर बरसों सोच-विचार किया जाए। बिरजू का आचरण उस समय मुझे जरूर बुरा लगा था, मगर बाद में मैंने यह सोचकर उसे माफ कर दिया था कि जवानी में एक-आध बार किसके पैर नहीं लड़खड़ाते।

वह स्टेशन पर मुझे लेने आया था और अगले दिन तक लगभग हर समय मेरे साथ ही रहा। वह बी० ए० फर्स्ट डिवीजन में पास कर चुका था और अब एम० ए० में पढ़ रहा था। कहने लगा, "मेरे माँ-बाप तो चाहते हैं कि मैं आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में भाग लूँ लेकिन मैं सरकारी नौकरी करना नहीं चाहता।"

मैंने पूछा, "तब क्या करोगे?"

बोला, "एम० ए० करके किसी छोटे-मोटे कॉलिज में लेक्चरर हो जाऊँगा या एल-एल० बी० करके वकालत करूँगा, वरना तुम्हारी तरह मैं भी जरनलिज्म के मैदान में आ कूदूँगा।"

उसने मुझे पूरे लखनऊ की सैर कराई। और इस बार मुझे अन्दाजा लगा कि वह लड़कियों को कितना प्रिय था।

युनिवर्सिटी यूनियन के कैफे में हम चाय पी रहे थे कि करुणा बनर्जी मिल गई और कहने लगी, "देखो, मिस्टर बिरजेन्द्र कुमार, हमारे बंगाली क्लब के प्रोग्राम में जरूर आना! हम गुरुदेव का नाटक 'रक्तोकरोबी' कर रहे हैं।" और जब बिरजू ने कहा, "करुणा मेरा आना तो मुश्किल है, यह मेरे दोस्त अलीगढ़ से आये हुए हैं,

इनको लखनऊ की सैर करा रहा हूँ," तो वह बोली, "अपने फ्रेंड को भी लेकर आइए ना, प्लीज़ !" और उसकी जैमिनी राय की तस्वीर जैसी बगाली आँखों में प्यार-ही-प्यार भरा हुआ था।

वहाँ से वह लायब्रेरी दिखाने गया, तो सरला माथुर से भेंट हो गई, जो बिरजू को कवि-सम्मेलन का निमन्त्रण देने के लिए तलाश कर रही थी। वह बोली, "बिरजेन्द्रजी, यह मैंने एक नई कविता लिखी है। इसे पढ़कर बताइएगा, कैसी है, मैं कवि-सम्मेलन में यही पढ़ने वाली हूँ।" जब वह चली गई तो बिरजू ने कविता मुझे दिखाई। शीर्षक था, 'मेरे सपने'। और दो ही पंक्तियाँ सुनकर मैं जान गया कि इस बेचारी के सारे सपनों का केन्द्र बिरजू ही था।

मेफेयर रेस्तराँ में चाय पीने गये तो वहाँ एक बहुत सुन्दर और स्मार्ट लड़की 'हैलो, बिरजू !' कहकर दौड़ पड़ी और जब बिरजू ने उसका परिचय कराया तो मालूम हुआ कि वह है मोहना जसपालसिंह। मैंने देखा कि उसकी काजल-लगी आँखों में बिरजू को देखते ही एक अजीब-सी आग चमक उठी है। और न जाने क्यों, मुझे उन भूखी, सुलगती आँखों से डर-सा लगा।

शाम को टैनिस क्लब में आशा सक्सेना से भेंट हुई, जिसकी प्रबल इच्छा थी कि बिरजू टैनिस में मिक्स डबल्ज़ के लिए उसका पार्टनर बन जाए। और जिस अन्दाज़ से वह उसे 'पार्टनर-पार्टनर' कहकर बुला रही थी, उससे स्पष्ट था कि उसे बिरजू को जीवन-भर का पार्टनर बनाने में भी कोई विरोध नहीं है।

मैंने अगले दिन बिरजू से पूछा, "अरे यार, तुम तो बड़े भाग्य-शाली हो ! ये सब लड़कियाँ तुम पर मरती हैं, मगर अब तक यह पता न चला कि तुम किसमें दिलचस्पी लेते हो, क्या सबसे ही फ्लर्ट करते हो ?"

वह बोला, "मैं जिसमें दिलचस्पी लेता हूँ, वह कोई और ही है, और उससे मैं फ्लर्ट नहीं करता। उससे मैं बहुत जल्दी शादी करने वाला हूँ।"

मैंने कहा, "अगर इन सब सौन्दर्यशालिनी और स्मार्ट लड़कियों

को छोडकर तुमने कोई और पसन्द की है, तो वह वाकई खास चीज होगी। हमे उससे मिलाओ।"

उसने मुस्कराकर कहा था, "खास चीज तो है वह, इसलिए तो मैंने उसे परदे मे रख छोडा है !"

मैंने कहा, "हम मुसाफिरों से क्या परदा ? हम तुम्हारे रकीब नही हैं यार !"

"तो फिर आज शाम को पाँच बजे मेफेयर रेस्तराँ मे चाय पियो और उससे मिलो।"

"किससे ? मोहना जसपाल से ?"

"नही मोहना तो बोर है, हालाँकि मेरे माता-पिता उससे मेरी शादी करना चाहते हैं, क्योकि वह एक जागीरदार की बेटी है। मगर जिससे मैं तुम्हें मिलाना चाहता हूँ, वह कोई और ही है, उससे मिलो।"

चार बजे मेफेयर में दाखिल हुआ तो देखा, एक कोने की मेज पर विरजू के पास सफेद साडी पहने एक लडकी बैठी है। मै बिलकुल पास पहुँच गया, तब भी उसकी सूरत न देख सका।

"तुम तो इनसे मिल चुके हो," विरजू ने कहा और सफेद साडी वाली लडकी ने मुड़कर देखा।

वह लक्ष्मी थी।

"नमस्ते !" उसने आँखें झुकाकर कहा।

"नमस्ते," मैंने निहायत बेमन से जवाब दिया और कुरसी पर बैठकर बैंड की धुन सुनने लगा।

उस शाम को गोमती के किनारे घूमते हुए घण्टो मैं और विरजू इस विषय पर बातें करते रहे।

मैंने कहा, "विरजू, तुम पागल हो गए हो कि मोहना जसपालसिंह, आशा सक्सेना और करुणाबनर्जी और सरला माथुर जैसी पढी-लिखी बड़े खानदानों की लड़कियो को छोडकर इस वेश्या से शादी कर रहे हो !"

"लक्ष्मी वेश्या नही है," उसने गुस्से मे कहा था।

"वेश्या न सही, वेश्या की पुत्री सही, मगर उसमें तुमने क्या देखा है जो सारी दुनिया की लड़कियों को छोड़कर उसे पसन्द किया है ?"

"वजह तो एक ही है, मेरे दोस्त, मैं उससे मुहब्बत करता हूँ और वह मुझसे मुहब्बत करती है। वह मेरी खातिर अपने घर वालों को, अपने पेशे को, अपने अतीत को छोड़कर यहाँ चली आई है। अगले महीने हम शादी करने वाले हैं।"

"और तुम समझते हो तुम्हारे घर वाले तुम्हें इस बेवकूफी की इजाजत दे देंगे ?"

"मुझे उनकी इजाजत नहीं चाहिए। जिन्दगी में ऐसे फैसले के लिए किसी की भी इजाजत नहीं चाहिए—माँ-बाप की भी नहीं, दोस्तों की भी नहीं।"

"दुनिया !" मैंने बड़ी कड़वाहट से कहा था, "तो फिर मुझे यह सब क्यों सुना रहे हो ?"

चलते-चलते रुककर उसने मेरे कंधों पर हाथ रखकर कहा था, "तुम्हारी इजाजत नहीं चाहिए, तुम्हारा प्रेम चाहिए। दोस्त जज बनकर अपने दोस्तों के आचरण की जाँच-पड़ताल नहीं करते, उनको अपनी दोस्ती और मुहब्बत की छाँव में शरण देते हैं।"

उसके बाद मेरा कुछ कहना बेकार था। मैंने सिर्फ इतना पूछा था, "तब तुम क्या करना चाहते हो ?"

उसने कहा था, "कल ही अपने शहर जा रहा हूँ, अपने माँ-बाप को इस निर्णय की सूचना देने। माताजी बीमार हैं, इसलिए खत लिखकर उनको एकदम शॉक देने की बजाय खुद जाकर उनको जबानी समझाना चाहता हूँ।"

"और अगर वे लोग राजी न हुए तो ?"

"तो उनकी मर्जी और इजाजत के बिना यह शादी होगी।"

और उसके कहने के ढंग में इतनी दृढ़ता थी कि मैं खामोश हो गया।

अगले दिन हम इकट्ठे ही स्टेशन पर गये। पहले उसकी गाड़ी जाती थी, उसके बाद मेरी।

टिकट की खिड़की पर जाकर जब उसने कहा, "एक फर्स्ट क्लास

श्यामनगर," तो बाबू ने पूछा, "सिंगिल या रिटर्न ?"

"रिटर्न," उसने बड़े जोर से कहा, "हमेशा वापसी का ही टिकट लेना चाहिए।"

लक्ष्मी भी उसे स्टेशन छोड़ने आयी थी। जब गार्ड ने सीटी दी और झंडी हिलाई और बिरजू अपने कम्पार्टमेंट में सवार हो गया तो लक्ष्मी की आँखों में आँसू उमड़ आए।

"अरी पगली, तू बिलकुल न घबराना।"

बिरजू ने गाड़ी चलते-चलते चिल्लाकर कहा, "मैं तो परसों ही लौट आऊँगा, ये देख, तीन दिन का रिटर्न टिकट!"

रेल चल पड़ी थी और रेल में बिरजू था। बिरजू के हाथ में एक हरा वापसी टिकट था। फिर रेल आगे जाकर अपने ही इंजन के धुएँ के बादलों में खो गई और अब न रेल थी, न बिरजू था और न था वापसी टिकट। और अब सिर्फ प्लेटफ़ार्म पर लक्ष्मी थी और लक्ष्मी की आँखों में आँसू थे और उन आँसुओं में प्रीतम से बिछुड़ने का गम भी था और उसमें जल्द फिर मिलने की आरज़ू और उम्मीद भी थी।

मैं अलीगढ़ वापस चला आया और इम्तहान की तैयारी में लग गया।

चन्द महीने मैंने बिरजू के ख़त का इन्तज़ार किया, मगर कोई ख़त नहीं आया। मैंने सोचा, नई-नई शादी हुई है, शायद हनीमून पर कहीं गए हों। फिर इम्तहान के चक्कर में सब-कुछ भूलना पड़ा। इम्तहान खत्म हुआ तो मुझे नौकरी के सिलसिले में बम्बई आना पड़ा। नये-नये काम का चक्कर ऐसा पड़ा कि अलीगढ़-लखनऊ, बिरजू-लक्ष्मी, सब पुरानी यादें बनकर खो गया। 1942 का आन्दोलन आया··· 1946 में झगड़े और खून-खराबे हुए··· 1947 में आज़ादी आयी··· मैं कई बार दुनिया के सफर को गया···जिन्दगी में कितनी खुशियाँ और कितने गम आये और हवा के झोंकों की तरह गुज़र गए, कितनी ही कामयाबियाँ और उनसे भी ज्यादा परेशानियों और नाकामियों से दो-चार होना पड़ा···फिर भी बिरजू और लक्ष्मी की याद एक कोने में दुबकी

रही···और उस सुबह, जब टेलीफोन की घंटी बजी तो सवालिया निशान दिन-दहाड़े एक भूत बनकर मेरे सामने आ खड़ा हुआ।

इस बार घंटी बजी तो वह टेलीफोन की नहीं थी। मैंने दरवाजा खोला, एक ढीली-सी अधमैली-सी बुश्शर्ट और पतलून पहने एक बूढ़ा-सा आदमी खड़ा, मोटे-मोटे शीशों की ऐनक में से मुझे घूर रहा था। उसके हाथ में एक प्लास्टिक का पोर्टफोलियो था, जैसा इंश्योरेंस एजेंट रखते हैं। ठीक उसी वक्त, जब मैं और बिरजू पच्चीस बरस के बाद मिलने वाले थे, यह बूढ़ा इंश्योरेंस का एजेंट न जाने कहाँ से आ टपका!

"क्या चाहिए?" मैंने किसी कदर चिढ़ते हुए पूछा।

झुर्रियोंदार, गहरे साँवले चेहरे पर एक हलकी-सी मुस्कराहट झलक आई।

"क्यों, भूल गए?"

"बिरजू?"

अगले क्षण हम दोनों एक-दूसरे से गले मिल रहे थे।

"मैं बहुत बदल गया हूँ न?" उसने बैठते हुए कहा, "तुमने भी नहीं पहचाना?"

यह एक सत्य था कि पच्चीस बरस पहले के बिरजू और इस बूढ़े में कोई दूर की भी समानता नहीं मालूम होती थी। मैंने सोचा, जरूर बेचारा सख्त बीमार रहा होगा, तभी तो उसके चेहरे और हाथों पर खाल उसी तरह लटकी हुई थी, जैसे उसके ढीले कपड़े। मैंने उसको धैर्य बँधाते हुए कहा, "पच्चीस बरस में हम सब ही बदल गए हैं। मुझे ही देखो, चँदिया बिलकुल साफ हो गई है!"

उसने कहा, "मैंने तुम्हारा नाम टेलीफोन डायरेक्टरी में तलाश किया। आशा तो न थी तुम मिलोगे, सुना है, अकसर तुम हिन्दुस्तान से बाहर रहते हो।"

टेलीफोन के जिक्र पर मैंने कहा, "मैं तो फोन पर तुम्हारी आवाज सुनकर समझा था, कोई अंग्रेज या अमरीकन है, जिससे मैं कहीं सफर

में मिला होऊँगा।"

"ओह, मेरा एक्सेंट ! मैं भी तो कितने ही बरस इंगलिस्तान में रहा हूँ। वैसे ही बात करने की आदत हो गई है।"

न जाने क्यों ऐसा लग रहा था जैसे वह कोई बात कहना चाहता है और उसी बात को छुपाना चाहता है।

कई तरह के विचार और सम्भावनाएँ मेरे दिमाग मे आयी।

शायद इसकी नौकरी छूट गई है, बेकार है···शायद मदद माँगने आया है।···शायद इसको शराब की लत पड गई है, तभी बहका-बहका-सा लगता है और उसके हाथों की अँगुलियाँ काँपती है···शायद इसने कोई अपराध किया है, इसीलिए इसकी आँखें बेचैनी से इधर-उधर देख रही हैं···कई सेकेंड तक हम दोनो एक-दूसरे के चेहरे मे अपने अतीत को खोजते रहे।

फिर मैंने कहा, "क्यो, बम्बई अकेले ही आये हो, भाभी साथ नही है क्या ?"

उसके जवाब ने मुझे चौंका दिया, "मैंने तलाक ले लिया है," लेकिन अब कम-से-कम उसकी परेशानी की वजह तो मालूम हो गई। इतने बरसों के अटूट प्रेम के बाद अगर तलाक की नौबत आई है तो कोई ताज्जुब नही कि बेचारे की यह हालत हो गई है।

मैंने कहा, "बड़ा अफसोस है, बिरजू ! लेकिन हुआ क्या जो तलाक लेना पड़ा ? इस उम्र में तो पति-पत्नी को एक-दूसरे के सहारे की सबसे ज्यादा जरूरत होती है।"

"पति-पत्नी !" उसने इन दो शब्दो को किसी कड़वी दवा की तरह थूका, "पहले ही दिन से हमारी शादी एक झूठ थी, एक भयानक गलती थी। चौबीस बरस तक मैंने उस गलती से निबाह किया, इस झूठ को सच करने की कोशिश की, लेकिन मैं कामयाब नहीं हुआ।"

मेरी समझ मे न आया कि क्या कहूँ, इसलिए मैं खामोश रहा। मेरे कुछ कहने की जरूरत भी न थी। वह बेचारा मुझसे कोई सलाह-मशवरा करने के लिए नही, अपने दिल का बुखार निकालने के लिए आया था।

कांपती हुई उंगलियों से उसने एक सिगार निकाला और मुंह से धुएँ का एक बादल उड़ाता हुआ बोला, "तुम सोचते होंगे, इतने बरसों मैं कहां गायब रहा। शादी के तुरन्त बाद ही मैं बीवी को अपने माँ-बाप के पास छोड़कर इंगलैंड चला गया। आई० सी० एस० का इम्तहान दिया और दुर्भाग्यवश पास हो गया।"

"तो तुम आई० सी० एस० में थे, और हमें कभी पता भी न चला?"

"मैं किसी को बताना भी नहीं चाहता था। तुम लोग उन दिनों सरकारी नौकरियों का बायकाट कर रहे थे, सत्याग्रह करके जेल जा रहे थे। मैं किस मुंह से तुम लोगों के सामने आता, इसलिए मैंने जान-बूझकर ऐसे-ऐसे स्थान चुने, जहां किसी पुराने दोस्त से मुलाकात न हो। पहले कई साल फ्रण्टियर में रहा, फिर आसाम में, फिर कुर्ग में···वहीं हमारा पहला लड़का पैदा हुआ···"

कितनी ही देर तक वह धुएँ के बादलों में न जाने कैसी तस्वीरें बनाता-बिगाड़ता रहा।

फिर वह बोला, "मगर वह हमारा लड़का नहीं था, वह तो उसका लड़का था जो मेरे एक चपरासी से पैदा हुआ था। जब मुझे यह मालूम हुआ, तो तुम समझ सकते हो, मेरी क्या हालत हुई होगी। छह महीनों तक तो मैं बिलकुल पागल हो गया। शराब तो मैं पहले भी पीता था, अब मैंने अपनी जिल्लत को डुबोने के लिए अन्धाधुन्ध पीना शुरू कर दिया। जब ह्विस्की से काम न चला तो कोकीन खाने लगा। तीन महीने पागलखाने में इलाज कराया, और जब इलाज कराकर किसी कदर अपने पर काबू पाया और बाहर निकला तो नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा। जलील होकर निकाले जाने से यही बेहतर था कि मैं खुद ही बीमारी का बहाना करके वक्त के पहले पेंशन की दरख्वास्त दे दूं। मैंने उसकी मिन्नत की कि मुझे तलाक दे दो, बच्चा ले जाओ, मेरी सारी पेंशन ले लो, मुझे छोड़ दो, ताकि मैं अपनी नयी जिन्दगी बना सकूँ। लेकिन वो न मानी। बोली, 'तुमने मेरी जिन्दगी तबाह की है। अब तुम मुझसे इतनी आसानी से छुटकारा न पाओगे।'

"फिर ?" मैंने नर्मी से कहा।

"फिर मैं उन दोनों को लेकर इंगलिस्तान चला गया। हिन्दुस्तान मे अब मैं किसी को भी मुह दिखाने के काबिल नही रह गया था। पेन्शन बेचकर जितना रुपया वसूल हुआ, उससे मैंने लन्दन मे एक मकान खरीद लिया। एक हिस्से में हम खुद रहते थे और बाकी मे हिन्दुस्तानी और अमरीकन विद्यार्थी किराया देकर रहते थे। बस, यही हमारे गुजारे की सूरत थी।"

"फिर ?"

"फिर वही पुरानी कहानी दुहराई जाती रही। अब मुझमें इतनी ताकत भी नही थी कि मैं इस दुश्चरित्रा से कोई पूछ-ताछ भी कर सकता। रात को जब तक 'पब' बन्द न होता, मैं वहाँ बैठा शराब पीता रहता था और वह उन किरायेदार नौजवान विद्यार्थियो से किराया वसूल करती रहती थी।···दस साल मे तीन और बच्चे हो गए—एक बिलकुल काला-कलूटा, एक सांवला, एक गोरा।"

मुझे अपने दोस्त की हालत पर रहम भी आ रहा था और गुस्सा भी। आखिर मुझसे न रहा गया और मैं बोल ही पडा, "और तुम नामर्दों की तरह यह सब देखते रहे और तुमसे यह न हुआ कि दो जूते रसीद करते और निकाल बाहर करते उस छिनाल को! मैंने तो चौबीस बरस हुए तुमसे कहा था, बिरजू, रंडी की बेटी से सिवाय बेवफाई के तुम और कुछ न पाओगे!"

"रंडी की बेटी ?" उसने ताज्जुब से दुहराया।

"हाँ-हाँ, रंडी की बेटी, लक्ष्मी!" मैने नफरत से भरपूर लहजे मे वह नाम ले ही डाला, जो इतनी देर से हम दोनो के बीच एक पहेली बना हुआ था, जिसको बूझने की हिम्मत न मुझमे थी, न उसमे।

"लक्ष्मी ?" उसने ऐसे लहजे मे दुहराया, जैसे उम्र में पहली बार नाम सुना हो। फिर वह बेतहाशा हँस पडा और हँसता रहा। एक कहकहे के बाद दूसरा कहकहा। उसे हँसी का दौरा पडा था, लेकिन उस हँसी मे एक खोखली-सी आवाज थी, कोई प्रसन्नता नही थी। मैं आश्चर्य से उसका मुंह ताकता रहा।

"तो तुम समझ रहे हो कि मैं अब तक तुमसे लक्ष्मी का जिक्र कर रहा हूँ ?"

"तो और क्या ?" मैंने कहा, "उसी से तो तुमने शादी की थी ना ?"

"काश, ऐसा ही होता, दोस्त !" उसने एक लम्बी-सी, ठण्डी-सी साँस भरके कहा, 'मगर जिससे मेरी शादी हुई वह वेश्या की पुत्री लक्ष्मी नहीं थी, एक जागीरदार की बेटी मोहना थी।"

"मोहना ?" और मैंने उस सुन्दर मुख को याद करने की कोशिश की, जो मैंने लखनऊ के मेफेयर रेस्तराँ में देखा था। और छब्बीस बरस के बाद भी मैंने देखा कि काजल की डोरी वाली उसकी आँखों में एक अजीब आग चमक रही है। उस वक्त मुझे क्या मालूम था कि एक दिन उसी आग में बिरजू की जिन्दगी झुलस जाएगी।

"और लक्ष्मी ?" मैंने पूछा, "लक्ष्मी का क्या हुआ ? आखिरी बार जब हम लखनऊ मिले थे, मुझे याद पड़ता है, तो तुम तीन दिन का वापसी टिकट लेकर अपने घर जा रहे थे अपने माँ-बाप को उस शादी की सूचना देने ?"

जवाब में उसने कुछ नहीं कहा। जेब से एक पुराना बटुआ निकाला और उसमें से एक तह किया हुआ कागज। एक कागज की तहों में से एक रेलवे टिकट का आधा हिस्सा निकला, जो बरसों के बाद इतना पुराना हो गया था कि इस पर छपे हुए सब अक्षर गायब हो गए थे। सिर्फ उसकी साइज से मालूम होता था कि कभी यह रिटर्न टिकट का वापसी वाला आधा हिस्सा रहा होगा।

अब मैं कुछ-कुछ समझा कि क्या हुआ होगा।

"तो जब तुम घर पहुँचे तो अपने माता-पिता, कुँवर साहब और कुँवरानी, को सहमत न कर सके ? उन्होंने तुम्हें जायदाद से बेदखल करने की धमकी दी ?"

उसने सिर हिलाकर स्वीकार किया कि ऐसा ही हुआ था।

"उन्होंने तुम्हें लखनऊ वापस जाने से भी रोक दिया ?"

उसने सिर हिलाकर हामी भरी।

"उन्होने जबरदस्ती तुम्हारी शादी अपने जागीरदार दोस्त की बेटी मोहना से तय कर दी ? उन्होने तुम्हें इंगलैण्ड भेजने का लालच दिया ? उन्होने तुम्हें डराया कि अगर तुमने एक वेश्या की पुत्री मे विवाह करके समाज मे स्कैंडल मचाया तो तुम्हें न केवल आई० सी० एस० मे हाथ धोना पडेगा, बल्कि कोई भी अच्छी नौकरी न मिल सकेगी ?"

उसका मुख आश्चर्य से खुला-का-खुला रह गया, "तुम्हे यह सब कैसे मालूम हुआ ?"

मैंने कहा, "ऐसा हमारे देश मे होता ही रहता है—फिल्मो मे भी, जिन्दगी मे भी—और उन दिनो तो और भी होता था। सामाजिक क्रान्ति के बारे मे भाषण करना अपने जीवन मे क्रान्ति लाने से ज्यादा आसान तब भी था और अब भी है।"

"अपनी उसी कमजोरी का परिणाम आज तक मैं भुगत रहा हूँ —मैं, जो देवदास की कमजोरी पर हँसता था !" ऐसा लगता था कि वह ऐसी बातें करके अपने-आपको सजा देना चाहता है।

"और, सो, रिटर्न टिकट की तीन दिन की अवधि बीत गई और तुम लखनऊ वापस न आये और वापसी का हिस्सा बेकार तुम्हारी जेब मे पड़ा रहा···"

"यही तो मुश्किल है, मेरे दोस्त !" उसकी आवाज भर्रायी हुई थी और आँखों मे आंसू झलक रहे थे, "जिन्दगी के सफर मे रिटर्न टिकट नही मिलता—जहाँ से हम चले हैं और जिन स्थानों से गुजरे है, हजार कोशिश करने पर भी हम वहाँ लौटकर नही जा सकते।"

"तो अब क्या इरादा है ?" मैंने काफी देर की चुप्पी के बाद पूछा।

बिरजू ने कहा, "मैंने मोहना को लन्दन का घर दे दिया है, अपनी सारी जायदाद उसके नाम लिख दी है। इस कीमत पर वह मुझे तलाक देने पर राजी हुई है।"

"तो क्या वह···मोहना···हमेशा से ऐसी थी ?"

"नहीं। पहले ऐसी नहीं थी। तभी तो पच्चीस बरस निबाह करने की कोशिश की मैंने।"

"फिर ऐसी कैसे हो गई ?"

कुछ देर तक बिरजू शान्त रहा। उसने एक नया सिगार जलाया। धीरे-धीरे उसने कई कश खींचे। फिर वह बोला, "दोषी मैं ही हूँ। मैं उसे वह न दे सका जो वह अपना अधिकार समझती थी। कोशिश करने के बावजूद मैं उससे मोहब्बत न कर सका।"

"तो क्या उसे लक्ष्मी के बारे में मालूम था ?"

"शादी के साल-भर बाद मालूम हो गया था। उस समय मेरी पोस्टिंग फ्रण्टियर में थी। एक रात मैं क्लब से बहुत शराब पीकर लौटा था। जब मैं अपने बैड-रूम में सोने के लिए गया तो चाँदनी में देखा कि सफेद कपड़े पहने लक्ष्मी मेरे पलंग पर लेटी है। मैंने उसे अपने आलिंगन में कस लिया और बहुत प्यार किया, बहुत प्यार किया। उसने कहा, 'बिरजू, तुम तो रो रहे हो ? क्या हुआ ?' मैंने कहा, 'वायदा करो, अब तुम मुझे कभी छोड़कर न जाओगी, लक्ष्मी···' लेकिन वह लक्ष्मी नहीं थी, वह मोहना थी और उस रात के बाद से वह मोहना भी नहीं रही, कुछ और ही हो गई। पहले उसने मेरे साथ शराब पीना शुरू किया, फिर दूसरों के साथ। उसके बाद जो हुआ वह तुमको मालूम ही है। मगर मैं अब भी उसे दोष नहीं देता। अपनी दुर्दशा और उसकी दुर्दशा दोनों का जिम्मेदार मैं हूँ।"

"और लक्ष्मी ?"

"उसकी जिन्दगी भी मेरी वजह से तबाह हो गई। जब मेरा सहारा छूट गया तो उसे अपनी माँ के पास वापस जाना पड़ा। और फिर उसे वही सब करना पड़ा, जिससे केवल मैं उसे बचा सकता था। बनारस से दिल्ली के चावड़ी बाजार में आयी। वहाँ से कलकत्ता के सोना गाछी में। वहाँ से बम्बई की फारस रोड पर। अब सुना है, बूढ़ी, बीमार और इस धन्धे के लिए बेकार होकर बनारस लौट गई है और वहाँ किसी मन्दिर की सीढ़ियों पर पड़ी है···और···और···

"और ?" मैंने पूछा।

"मैं उसके पास जा रहा हूँ।"

उस शाम को जब मैं उसे छोड़ने स्टेशन गया और हम टिकट खरीदने लगे, तो बाबू ने पूछा, "सिंगल या रिटर्न ?"

बिरजू ने जल्दी से कहा, "सिंगल !"

और फिर प्लेटफ़ार्म पर पहुँचकर मुझसे बोला, "यह मेरा आख़िरी सफ़र है। इस बार मुझे वापसी टिकट की ज़रूरत नहीं।"

और ट्रेन छूटने से पहले मैंने एक अजीब चमत्कार देखा। वह झुर्रियोंदार चेहरे और खिचड़ी बालों वाला बूढ़ा अब बूढ़ा नहीं लग रहा था, उसके गाल एक अजीब प्रसन्नता और जोश से तमतमा रहे थे। उसकी आँखों में एक नई ज़िन्दगी चमक रही थी। उसकी आवाज़ में एक करारापन आ गया था···एक क्षण के लिए मुझे वह अपना वही पच्चीस बरस वाला बिरजू लगा।

मैंने कहा, "बिरजू, लक्ष्मी भाभी को मेरा प्रणाम ज़रूर कहना ! हम तुम्हारे रक़ीब नहीं हैं, यार !" और मैंने देखा कि वह नये-नवेले दूल्हे की तरह शरमा रहा है।

आओ, ताजमहल को ढाएँ

लड़की ने कहा—"शज्जू !"

लड़के ने कहा—"ममती !"

शज्जू—हो सकता है, उसका नाम शमशेरसिंह हो, शुजाअतअली खाँ हो, शमेन्दरकुमार हो या मोहरराव वाटलीवाला हो, मगर इस वक्त वह सिर्फ शज्जू था।

ममती—हो सकता है, उसका नाम मरियम जमानी हो, माया हो, अमृतकौर हो या मेरी डी सूजा हो, मगर इस वक्त वह सिर्फ ममती थी।

लड़की ने कहा—"कुछ कहो, शज्जू !"

लड़के ने कहा—"सुनो ममती ?"

फिर वह खामोश हो गया और चाँदनी में नहायी हुई फिजा खामोशी के साज पर एक बड़ी पुरानी धुन सुनाती रही।

लड़की ने कहा—"सुना तुमने ? पत्थर गा रहे हैं।"

लड़के ने कहा—"श्‌···श्‌···श्‌···गौर से सुनो; यह लय जानी-पहिचानी मालूम होती है।"

थोड़ी देर की खामोशी के बाद लड़की ने कहा—"यह लय तो ऐसी लगती है, जैसे पहले कभी, कहीं सुनी हो !"

और, लड़के ने कहा—"जन्मदिन से लेकर आज तक हर रोज, हर वक्त हम इस लय को सुनते आए हैं और मरते दम तक सुनते रहेंगे।"

कुछ देर तक लड़की खामोशी से उस लय को सुनती रही, फिर

बोली—"यह लय पुरानी है, फिर भी नई क्यों लगती है ?"

लड़के ने कहा—"इसलिए कि हम इसे सुन कर भी नहीं सुनते, सुनते है तो पहचानते नही । यह लय नही है ममती, यह हमारे दिल की धड़कन है ।"

फिर, दोनों खामोश हो गए और दोनो के दिल एक-लय होकर धड़कते रहे, पत्थर गाते रहे, चाँदनी गुनगुनाती रही, वक्त चलते-चलते रुक गया—वक्त सो गया, सारी कायनात सो गई। सिर्फ मुहब्बत जागती रही और तालाब के पानी की तह मे मुहब्बत की सफेद परछाईं झिलमिलाती रही, मुस्कराती रही ।

लड़की ने एक गहरी सांस भरी और कहा—"काश, हमारी मुहब्बत की यह घड़ी जम कर अमर हो जाए !"

लड़के ने कहा—"हो सकता है । वह देखो, तीन सौ बरस के बाद भी किसी की मुहब्बत का लरजता हुआ आंसू वक्त के सावले गाल पर मोती की तरह चमक रहा है ।"

लड़की ने कहा—"वह तो ताजमहल है । उसको तो एक शहशाह ने दौलत का सहारा लेकर करोड़ो रुपये खर्च करके लाखो राज-मजदूर लगाकर बीस बरस मे बनवाया था !"

लड़के ने कहा—"रुपये से इमारत बन सकती है मगर रुपये से हुस्न की कद्र नही की जा सकती । शहंशाह महल बनवा सकता है, ताजमहल नही । ताज मुहब्बत के आँसुओ से बनता है ।"

लड़की ने सहम कर धीरे से पूछा—"फिर ?"

लड़के ने उसकी आँखो मे आँखें डाल कर जवाब दिया—"आओ हम भी ताजमहल बनाएँ ।"

वक्त रुका हुआ था, चाँदनी गुनगुना रही थी, पत्थर गा रहे थे, तालाब के पानी मे मुहब्बत की सफेद परछाईं झिलमिला रही थी, मुस्करा रही थी ।

शज्जू ममती की मुहब्बत मे खोया हुआ था । वह था भी, और नहीं भी था। ममती शज्जू की मुहब्बत मे खोई हुई थी, वह थी भी, और नही भी थी । यकायक वह तिलस्मी लम्हा एक बिल्लौरी जाम

की तरह टूट गया। पत्थर खामोश हो गए और चाँदनी काले-काले बादलों में छिप गई। हवा के एक तेज झोंके से तालाब का पानी लरज उठा और मुहब्बत की नूरानी परछाई काले गहरे पानी में डूब गई।

ममती ने घबरा कर पूछा—"यह कैसी भयानक आवाज है, शज्जू।"

शज्जू ने गौर से सुनते हुए जवाब दिया—"समझ में नहीं आता। ऐसा लगता है, जैसे···" फिर वह खामोश हो गया, मानो उस मनहूस आवाज को पहिचानते हुए भी उसे न पहिचानना चाहता हो। वह आवाज थी एक फौलादी कुदाली की—कुदाल, जिसकी चोट संगमरमर पर पड़ रही थी कोई ताजमहल को ढा रहा था।

एक आवाज ने नारा लगाया—"ताजमहल को···"

हजारों आवाजों के कोरस ने नारा पूरा किया—"···ढाएँगे।"

एक आवाज ने पुकारा—"ढाएँगे हम···"

हजारों आवाजों ने एक साथ जवाब दिया—"···ताजमहल को"

फिर कई मिनट तक जोशीली, गुस्से और नफरत से भरी हुई आवाजों का कोरस गाता रहा—

ताजमहल को ढाएँगे,

ढाएँगे हम ताजमहल को,

जमाअते फिदायाने मिल्लत का पहला सालाना जल्सा ताजमहल को ढाने के बारे में हो रहा था। पंडाल के ऊपर सब्ज झंडे लहरा रहे थे और अन्दर पंखों की हवा में मेंहदी से रंगी हुई दाढ़ियाँ लहरा रही थीं। मौलाना मौलवी इल्हाज फखरुलकौम फिदाए कौम अल्लामा मलिकुल जब्बार जनाब आलीशान खान अपना अध्यक्षीय भाषण पढ़ रहे थे जो उन्होंने चार सौ बीस रुपये देकर कानपुर के एक नामालूम अखबार के एडीटर से लिखवाया था।

आलीशान खान दरअसल न मौलाना थे न मौलवी। पैदाइशी पठान भी नहीं थे। आजादी से एक साल पहले अंग्रेजी सरकार ने इनको

जगी खिदमात (युद्धकालीन सेवाओं) के एवज खानसाहब का खिताब जरूर दिया था क्योंकि इन्होंने फौज को दो लाख जूते सप्लाई किए थे। जूतो के तलो मे गत्ता था इसलिए खानसाहब को जो तमगा मिला उसके सोने मे भी तांबे की मिलावट थी। हाँ, तो आलीशान खान कानपुर मे चमड़े के व्यौपारी थे। उनकी दाढी भी नकली थी जो वे वक्त जरूरत लगा लिया करते थे। हज उन्होने सिर्फ एक बार लन्दन का किया था जब वहाँ चमड़े के व्यौपार की निस्वत एक कान्फ्रेन्स हुई थी। आज के जलसे की सदारत के लिए उनसे ज्यादा मौजू कोई और न था। उन्हें हमेशा ताजमहल से चिढ रहती आई थी। उनका कहना था कि 'मेरा बस चले तो वहाँ एक बूचडखाना खोल दूं। बाग मे शमशाद के पेड़ो की छाँव मे मवेशी बँधे रहें, संगमरमर के तालाबो मे गाय-बैल पानी पियें और गुम्बद के नीचे रोजे मे कसाई मवेशियों को हलाल करते रहे।' चूंकि ऐसा होना मुमकिन नही था, उन्होने इस जमाअत का सरपरस्त होना मंजूर किया था और इस आन्दोलन के लिए बढ़-चढ कर चन्दा दिया था। इसी चन्दे के जोर पर तो वे इस जमाअत के सदर चुने गए थे!

"हाजरीन!" आलीशान खान ने अपना भाषण जारी रखते हुए चिल्लाकर कहा—"ताजमहल को मिस्मार करना हमारा मजहबी फर्ज है, हमारा राजनैतिक ध्येय है। यह संगमरमर का भूतखाना हमारे इतिहास के सुनहरे पृष्ठो पर कलंक का टीका है। जब तक यह कायम रहेगा, हमारी तहजीब, हमारे मजहब, हमारी सियासत, सब पर काफिरों की संस्कृति का साया पडता रहेगा। इस सिलसिले में मैं आपको आगाह करना चाहता हूँ कि इस ताजमहल के पुजारी मुहब्बत के नाम पर आपको बहकाएँगे, हुस्न और इश्क के फर्जी अफसानों से आपको बहलायेंगे। मुहब्बत···" उन्होने 'मुहब्बत' के लफ्ज को अपनी जुबान से इतनी नफरत के साथ थूका जैसे वह जहर का एक कतरा हो। 'मुहब्बत···' एक बार फिर उन्होने इस लफ्ज को नफरत के साथ दोहराया क्योंकि उस वक्त वे अपनी चौथी बीवी के बारे मे सोच रहे थे। उनकी तीन बीवियाँ पहिले मे मौजूद थीं थीं।

एक बीवी वह थी जिसमे उनके माँ-बाप ने तीस बरस पहिले शादी कर दी थी। वह बेचारी अब बूढ़ी हो चुकी थी और आलीशान महल के उस हिस्से में जहाँ दूसरे नौकर रहते थे, एक कोठरी में अपनी जिन्दगी के बाकी दिन पूरे कर रही थी। दूसरी बीवी वह थी जो आगरे के बाज़ारे हुस्न की जीनत थी और जिसमे पन्द्रह बरस हुए, उसकी माँ को पाँच हज़ार रुपये देकर उन्होंने निकाह पढ़वाया था। उसकी जवानी भी अब ढल चुकी थी मगर जुबान की वह बड़ी तेज़-तर्रार थी। तभी तो शादी के फौरन बाद ही उसने काफी जायदाद अपने नाम लिखवा ली थी! वे इतनी आसानी से उससे छुटकारा नहीं पा सकते थे। इसलिए इन्होंने उसे अपनी नैनीताल की कोठी में रख छोड़ा था। वहाँ वे कभी-कभी गर्मियाँ गुज़ारने के लिए उसके पास चले जाया करते थे।

तीसरी बीवी से शादी किये हुए पाँच बरस हो चुके थे। मगर वह उससे सबसे ज्यादह डरते थे क्योंकि वह इनसे कहीं ज्यादह पढ़ी लिखी थी। बी. ए. बी. टी. थी और आलीशान गर्ल्स स्कूल में हेड-मिस्ट्रेस थी। खान साहब ने अपने स्कूल का मुआयना करते हुए उसे देखा था और देखते ही उन्होंने तय कर लिया था कि अगर वहीं लीडरी करनी है तो एक बीवी ऐसी भी होनी चाहिये जो उनके साथ जल्सों और कान्फ्रेंसों में चहक सके और जब वे किसी मिनिस्टर को डिनर दें तो वह मेहमानों से राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं पर बातचीत कर सके। हेडमिस्ट्रेस बेचारी पहिले ही बेवा थी, ज्यादा खूबसूरत भी नहीं थी। उसने खानसाहब का पैगाम खुशी से कुबूल करके निकाह पढ़वा लिया। अपने शौहर की सामाजिक जिन्दगी में भी उसने काफी हाथ बँटाया था। छोटी-मोटी तक़रीरें भी वह लिख देती थी लेकिन उसके पढ़ने-लिखने का शौक उसके शौहर को परेशान किए रहता था। यों, मिसेज आलीशान नम्बर तीन को अफसाना-निगारी की बीमारी थी। अफसाने भी वह खालिस रूमानी लिखती थी। जब भी उन कहानियों में खानसाहब हीरो के घूँघरवाले चमकीले स्याह बालों और चौड़े-चकले सीने का ज़िक्र पढ़ते तो उनकी

नींद उड़ जाती। उनको यकीन हो जाता कि उनकी तालीम-याफ्ता बीवी के अफसानों का हीरो उसका गंजा शौहर नहीं, बल्कि कोई नया ही नौजवान है। फिर वे यह भी सोचकर परेशान हो जाते कि शायद वह नौजवान खयाली न हो, असली ही हो !

इसलिए और भी आलीशान खान को चौथी बीवी की तलाश करनी पड़ी। वैसे कोई खास तलाश भी नहीं करनी पड़ी। बस, एक पके हुए आम की तरह उनकी आरजू की झोली में आ गिरी। हुआ यह कि खान के जूतों के कारखाने में एक बूढ़ा क्लर्क रहमान काम करता था जिसे सब रहमान चाचा कहते थे। खानसाहब रहमान चाचा का बड़ा ख्याल रखते थे क्योंकि जब कभी मजदूरों की यूनियन मजदूरी बढ़ाने का मसला उठाती और अपनी मांगों को मनवाने के लिए 'स्ट्राइक' की धमकी देती तो रहमान चाचा जैसे पढ़े-लिखे मुसलमान मुलाजिम दूसरे मुसलमान मजदूरों को यूनियन के खतरनाक प्रोपेगण्डे से बचाये रखते और उन्हें याद दिलाते कि यह एक मुसलमान मालिक का कारखाना है। उसी वक्त अखबार में मजमून निकलने शुरू हो जाते कि हिन्दू कारखानों के मालिक किस तरह मुसलमान मजदूरों के साथ जुल्म करते हैं और किस तरह धनवान हिन्दू लोग मुसलमान कारखानों को बन्द करवाने के लिए दीनोईमान के जरिये से 'स्ट्राइक' करवाते हैं। उसी मौके पर मुसलमान मजदूरों के जलसे होते, मीलाद शरीफ की महफिलें होतीं, दो-तीन मुल्ला दावत के लिए बुलाए जाते। नतीजा यह होता कि मुसलमान मजदूर अपने स्वार्थ को मालिक के हित के लिए कुर्बान करके 'स्ट्राइक' को नाकामयाब कर देते और आलीशान खान के मुनाफे में कमी न होने पाती। इस खिदमत के इनाम में रहमान चाचा की तनखा दस रुपये बढ़ा दी जाती।

एक दिन रहमान चाचा परेशान-सूरत बनाए मालिक के दफ्तर में दाखिल हुए और रोनी आवाज में कहने लगे—

"खानसाहब, तीन सौ रुपये पेशगी मिल जाएँ तो बड़ी मेहरबानी हो।" खान बोले—"क्यों रहमान चाचा, क्या मुश्किल आन पड़ी कि इतना सारा रुपया एडवांस चाहिए ?"

रहमान चाचा का रोना इस हमदर्दी से और भी बढ़ गया। सिसकियां लेते हुए बोले—"खानसाहब, क्या बताऊँ, इज्जत का सवाल है।"

"अरे भाई, तुम्हारी इज्जत मेरी इज्जत भी तो है! कहो तो क्या हुआ?" तब रहमान ने बताया कि उनकी एक लड़की है। नाम उसका मरियम जमानी है लेकिन सब उसे ममती-ममती कहते हैं। स्कूल में नवें दर्जे में पढ़ती है। उसके पड़ोस में एक पंजाबी शरणार्थियों का खानदान रहता है। उनका एक लड़का है—धर्मेन्द्रकुमार भल्ला। उसे सब गज्जू-गज्जू कहते हैं···" इतना कहते हुए रहमान चाचा की आवाज भर आई और ओंठ काँपने लगे—

"बस, आगे क्या कहूँ सरकार, शरीफ आदमी के लिए तो मरने का मुकाम है!" खान गरजे—"तो क्या, उस काफिर के बच्चे ने तुम्हारी लड़की को छेड़ा?" रहमान चाचा ने बताया कि उन्होंने मरियम की मंगनी उसके मामूजाद भाई से की थी लेकिन उस बेहया लड़की ने वहां शादी करने से साफ इन्कार कर दिया। जब उसकी ब्याहता बड़ी बहिन ने वजह पूछी तो बोली—

'मैं शादी करूँगी तो गज्जू से, वर्ना जहर खाकर जान दे दूंगी।' खान का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। वे बोले—

"अब इन लोगों की यह हिम्मत हो गई कि अपने नापाक हाथ हमारी इज्जत पर डालने लगे? चश्मे फलक ने आज तक, देखी नहीं जिसकी झलक!"

फिर उन्होंने पूछा—"तो अब क्या इरादा है, रहमान चाचा?"

"इरादा क्या है सरकार, मुसलमान के हर मर्ज का तो एक ही इलाज है—पाकिस्तान! अपनी और इस कम्बख्त, दोनों की परमिट निकलवाई है। सोचता हूँ कि इसे पाकिस्तान ले जाऊँ और वहाँ किसी जगह इसका ब्याह कर दूं। यहाँ इतनी बदनामी हो गई है कि कोई शरीफ घराना इसे कबूल नहीं करेगा।"

कुछ देर खामोश रहकर खान बोले—"करेगा क्यों नहीं? मजहब की इज्जत का सवाल है, भाई। लड़की की उम्र क्या है?"

"अठारह बरस", रहमान चाचा ने जवाब दिया।

खान कुरसी पर से उठकर रहमान के पास आए और बोले—"अगर तुम चाहो तो तुम्हारी इज्जत की खातिर मैं खुद तुम्हारी ममती से शादी कर सकता हूँ।"

सो, ममती की शादी जबर्दस्ती खान के साथ कर दी गई। यों, उनका चार बीवियों का कोटा पूरा हो गया। ममती खूबसूरत थी, जवान थी। उसको देखते ही खान साहब के बुढ़ापे की खिज़ाँ में एक बार फिर बहार आ गई। गंजे सर के रहे-सहे बालों और मोछों में खिजाब का इस्तेमाल ज्यादह करने लगे। उन्होंने अपनी नई-नवेली बीवी के लिए रेशमी साड़ियों का ढेर लगा दिया और उसे सोने-जवाहरात से लाद दिया लेकिन फिर भी वे उसके मन को न जीत सके। वह दिखाने को तो उनका अदब-लिहाज करती थी, उनका हर हुक्म मानती थी, मगर खानसाहब को यही महसूस होता था कि वह उनकी बीवी नहीं है, एक चलती-फिरती गुड़िया है जिसे वे बाजार से खरीद लाए हैं—जिसमें न कोई जज्बा है, न एहसास।

खान ने सोचा, आजकल की लड़कियाँ इश्किया नावेल और रूमानी फिज़ा में पली और बड़ी हुई हैं। रात-दिन रेडियो सीलोन पर 'प्यार किया तो डरना क्या' और 'तेरी प्यारी-प्यारी सूरत को किसी की नजर न लगे' के रिकार्ड सुनती हैं। इसके लिए दूसरे तरीके इख्तयार करने पड़ेंगे। सो, उस दिन से जब-जब वह ममती के सामने आते तो ठण्डी साँस भरकर इश्किया अशआर पढ़ते, उसे रूमानी सिनेमा दिखाने ले जाते और जब घर वापस आते तो अपने चेहरे पर देवदास की कैफियत पैदा करने की कोशिश करते। एक दिन उन्होंने ममती का नर्म, छोटा-सा हाथ अपने हाथ में लेकर अपने धड़कते हुए दिल पर रखा और बोले—

"ममती, मेरी जान! कब तक रूठी रहोगी? मैं तुमसे बेइन्तहा मुहब्बत करता हूँ।" "मुहब्बत!" वह चिल्लाई। वह लफ्ज़ इस जोर से बेडरूम में गूंजा कि खान के गाल तमतमा उठे, मानो किसी ने एक जन्नाटेदार तमाचा रसीद कर दिया हो।

"खबरदार !" वह दीवानी-सी चिल्लाई। "खबरदार, जो कभी यह लफ्ज़ जुबां से निकाला; नहीं तो मैं अपनी जान दे दूंगी ! चमड़े के सौदागर, तुमने तो चार-चार औरतों के जिस्म खरीदे हैं। सिर्फ़ खाल खींचने के लिए तुम गाय-बैल खरीदते हो। तुम मुहब्बत के मानी क्या जानो !"

बस, उसी दिनसे यह एक लफ्ज़—'मुहब्बत' खानसाहब के दिमाग़ में ज़हर के कतरे की तरह गर्दिश कर रहा था। आज हज़ारों के मजमे के सामने जब इन्होंने इस लफ्ज़ को थूका तो उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि वाकई उन्होंने इस ज़हर को अपने खून में से निकाल फेंका हो।

"मुहब्बत" वह एक बार फिर गुस्से और नफरत से चिल्लाए—"मुहब्बत ! यह वही ज़हर है जिसने हमारी इज्ज़त, हमारी आबरू का खून पहले भी किया है और आज भी किये जा रहा है। मैं क्या सुनाऊँ, आपको इस मुहब्बत के कारनामे, जिसकी संगीन निशानी यह मनहूस ताजमहल आज भी खड़ा हमारी परम्परा को मुंह चिढ़ा रहा है वह परम्परा चंगेज़ खान और बाबर की चलाई हुई है—वे चंगेज़ और बाबर, जो अपनी फौजों को लेकर मुल्क-पर-मुल्क फतह करते थे, इश्को-मुहब्बत में वक्त जाया नहीं करते थे। लेकिन उनके पोते अकबर ने अपनी खानदानी परम्परा को ठुकरा कर अपने माथे पर हिन्दुआनी टीके की शक्ल में मुहब्बत का कलंक लगा लिया।

अकबर ने मुहब्बत की, किससे ? एक काफिरज़ादी राजपूत शहज़ादी जोधाबाई से। उसी दिन से खानदान-मुगलिया के शाही खून की पवित्रता खत्म हो गई। उस खून की मिलावट का नतीजा ज़ाहिर हुआ जहांगीर की शक्ल में। जहांगीर ने पहले मुहब्बत की महज़ की एक लौंडी अनारकली से और फिर नूरजहां से। उसकी मुहब्बत का नतीजा था शाहजहां, जिसने दक्षिण की लड़ाई के मोर्चे पर भी मुमताज का रेशमी आँचल न छोड़ा। ज़रा ख्याल फर्मायें एक शहंशाह जिसकी रगों में गाज़ियों का खून दौड़ रहा हो, सिर्फ़ एक औरत के इश्क से इतना दीवाना हो गया कि उसकी मौत पर होशोहवास खो बैठा, अपने फर्ज़ को भुला बैठा ! बजाए सल्तनत बढ़ाने की कोशिश के, अपनी महबूबा

का मकबरा बनवाने में मसरूफ हो गया ! उस मकबरे पर, मुहब्बत के उस मरमरी (संगमरमर के) ढोंग पर करोड़ो रुपया खर्च दिया ! उसी रुपये से गाजियों के दर्जनो लश्करो की परवरिश की जा सकती थी। उसी रुपये से सारे हिन्दोस्तान की ही नही, सारी दुनियाँ की फतह के मन्सूबे बनाए जा सकते थे। अकबर की तरह उसने भी एक खानदान की प्रतिष्ठा को, खालिस इस्लामी शहंशाहियत की इज्जत को कुर्बान कर दिया, सिर्फ मुहब्बत की खातिर ! मैं कहता हूँ, लानत हो ऐसी मुहब्बत पर।"

पंडाल फिर नफरत-भरी आवाजो से गूँज उठा—"इश्को मुहब्बत, मुर्दाबाद ! इश्को मुहब्बत मुर्दाबाद ! !"

और फिर से नारे बुलन्द हुए—"ताजमहल को ढाएँगे···ढाएँगे हम ताजमहल को !" आलीशान खान ने अपना भाषण खत्म किया तो उनका मुँह लाल हो रहा था, कनपटी की रगें धड़क रही थी और मुँह से झाग निकल रहे थे। उनकी तीसरी बीवी ने अपने रेशमी रूमाल से शौहर की पेशानी का पसीना पोंछते हुए कहा—

"डार्लिंग, यू डिड वण्डरफुल !"

अब प्रो० उचकानी तकरीर कर रहे थे—"हजरात, मैं जनाब आलीशान खान की तरह तकरीर करने काबिल नही हूँ। मैं तो किताब का कीड़ा हूँ—एक इतिहासकार हूँ जिसने तीस बरस तक इतिहास के उतार-चढाव पर छानबीन की है। मैं अर्ज करना चाहता हूँ कि ताज-महल संगमरमर का मकबरा नही है, एक बदनुमा धब्बा है हमारे दामन पर, जिसकी गैर-इस्लामी खासियत हमारी संस्कृति और हमारे इति-हास को मुँह चिढा रही है।

मुमकिन है, आपमे से किन्ही को यह सुन कर ताज्जुब हो रहा हो क्योंकि अज्ञानी लोग यही समझते है कि ताजमहल इस्लामी संस्कृति और शिल्पकला का एक खूबसूरत नमूना है। इसी तरह शेरवानी को भी गलती से इस्लामी लिबास समझा जाता है, हालांकि यह हिन्दुओं के अँगरखे की दूसरी शक्ल है। मैं साबित कर सकता हूँ कि मुगलो की शिल्पकला और ताजमहल की कारीगरी खालिस इस्लामी नही है। ऐसे

गुम्बद, ऐसे कलश, ऐसी मिहरावें और ऐसी मीनाकारी आप इस्लामी मुल्कों में नहीं पाएँगे। ताजमहल के गुम्बदों पर मन्दिरों और शिवालों के कलश की छाप है जिन्हें मुगल आर्ट कहा जाता है।

इस इमारत को बनाने वालों में अलीस ऐफेन्दी, अमानतखान शीराजी और इस्माइलखान के साथ मोहनलाल, मनोहरसिंह और मन्नूलाल भी शामिल थे। कहा जाता है कि ताजमहल हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति और आर्ट के सम्मिलन का मुकम्मिल नमूना है। हम उसे इसीलिए ढाना चाहते हैं कि जिस वक्त तक ताजमहल कायम रहेगा इसकी मिसाल देकर कौमियत का ढोल पीटा जाएगा। मत भूलिएगा कि अभी तो सिर्फ एक पाकिस्तान बना है, अभी हमें कितने ही पाकिस्तान और बनाने हैं। इसलिए आप अपनी संस्कृति को बचाना चाहते हैं तो आपका एक ही ऐलान, एक ही माँग, एक ही नारा हो सकता है, और वह है…"

हजारों आवाजों के कोरस ने जवाब दिया—

"आओ, ताजमहल ढाएँ।"

'ताजमहल को ढाएँगे, नष्ट करेंगे ताजमहल को।'

नारे वही थे मगर जगह दूसरी थी। इस पंडाल के ऊपर भगवे झंडे फहरा रहे थे और पंडाल के अन्दर दाढ़ियों के बजाय चोटियाँ लहरा रही थीं। गर्मा-गर्मी वही थी, गुस्से और नफरत का समन्दर वैसा ही ठाठें मार रहा था। अखिल भारतीय ताजमहल तोड़क-फोड़क मण्डल का प्रथम वार्षिक सम्मेलन हो रहा था। पहले वेदों का पाठ किया गया फिर इकसठ पंडितों ने जो चार धाम से बुलाए गए थे, हवन किया जिसमें इकतालिस मन घी, इक्यावन मन सन्दल की लकड़ी और इकसठ मन हर किस्म का अनाज जलाया गया। उसके बाद भगवान गोडसे की मूर्ति को सोने के सिंहासन पर विराजमान करके उसकी आरती उतारी गई।

अब धरमपालक सचालक श्री श्री श्रीमान सेठ धनीराम सोना-

चाँदीवाले ने अपना एड्रेस पढ़ना शुरू किया।

सेठ धनीराम सत्ताईस बिल्डिंगों, सात मिलों, पाँच अखबारों, दो शराब के कारखानों और एक अदद तोंद के मालिक थे। यह तोंद उनकी दौलत और पोजीशन की एक जिन्दा निशानी थी। जैसे-जैसे वे अपना एड्रेस पढ़ते जाते थे, उनकी आवाज के हर उतार-चढ़ाव के साथ उनकी तोंद में समुन्दर की लहरों की तरह ज्वार-भाटा आ रहा था।

यह एड्रेस काशी के एक महा विद्वान पंडित धर्मदास महाराज का लिखा हुआ था। अगरचे सेठ धनीराम ने घर पर दो बार इसको पढ़ने का रिहर्सल किया था, फिर भी वह अब तक सब शब्दों का मतलब न समझ पाये थे और अब भी अटक-अटक कर और हिज्जे कर-करके पढ़ रहे थे।

"देवियो, माताओ, बहिनो, पुत्रो, सज्जनो, भारतवर्ष-निवासियो, जै हो, जै हो, मैं जो केवल एक साधारण व्योपारी हूँ, एक धर्म-सेवक होने के नाते आपको यह चेतावनी देने आया हूँ कि समय आ गया है जब हम भारतीयों को यह निश्चय करना पड़ेगा कि हम भारतवर्ष को हिन्दुस्तान, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म का महान केन्द्र बनाना चाहते हैं। ये मुसलमान हमारी सारी पुरानी परम्परा को धर्म की ज्वाला में भस्म कर देना चाहते हैं। हमारे उर्दू-भगत और मुसलमान दोस्त, प्रधानमन्त्री के लिए, मुसलमानों की संस्कृति, भाषा और उनकी सभ्यता के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। उनका पाकिस्तान बन चुका है। अब हमें भारतवर्ष को हिन्दू जाति का पाकिस्तान बनाना है। अब यहाँ न उर्दू भाषा चलेगी, न अलीगढ़ की मुस्लिम-युनिवर्सिटी रहेगी। हम उसका नाम बदल कर कौटिल्य महाविद्यालय रख देंगे। अब न मस्जिदें, मकबरे रहेंगे और न यह ताजमहल रहेगा जो भारतवासियों की छाती पर खड़ा मूँग दल रहा है।

हमारे देश के दुर्भाग्य से हिन्दू जाति में ऐसे मूर्ख व्यक्ति मिलेंगे जो इस ताजमहल को प्रेम की अमर निशानी कहते हैं, जो सम्राट शाहजहाँ और उसकी रानी मुमताजमहल के प्रेम की सौगन्ध खाते हैं। पर यह उनकी भूल है। शाहजहाँ और मुमताज का प्रेम···"

मुमताज का प्रेम !

सेठ धनीराम की आवाज उनका भाषण सुनाती रही लेकिन उनके दिमाग के ग्रामोफोन की सुई इन शब्दों पर अटक गयी।

मुमताज का प्रेम···

मुमताज का प्रेम·

मुमताज···

मुमताज···

मुमताज··

प्रेम·· ···

प्रेम······

और अब उनके दिमाग में याद की चाँदी की घंटियाँ बज रही थीं, लेकिन नहीं, वे याद की घंटियाँ नहीं थीं, मुमताज की पाजेब के घुंघरू थे। याद का पंछी पीछे को उड़ चला। शहर आगरा और मुमताज··· मुमताज सेव के बाजार में अपने कोठे पर नाच रही थी और एक नौजवान धनीराम मसनद पर गाव-तकियों के सहारे टिका मुहब्बत-भरी नजरों से उसे देख रहा था।

उस रात उसने मुमताज से कहा था—"ममती, मैं तेरे बिना नहीं जी सकता—" और ममती ने हाथ जोड़कर कहा था—"मुझे कोठी में न घसीटिए। आप कोठी में रहने वाले हैं, मैं कोठे पर बैठने वाली······"

तब धनीराम ने कहा था—"ममती, मैं तुझसे प्रेम करता हूँ। क्या तू यह नाच-गाना छोड़ कर मेरे साथ चलेगी ?"

ममती की आँखों में आँसू आ गये थे और उसने काँपती हुई आवाज में कहा था—"मैं आपकी दासी हूँ, आपके लिए जान भी दे सकती हूँ," और मुमताज शुद्ध होकर मायादेवी बन गयी थी।

लेकिन जिस दिन इनका विवाह होने वाला था, धनीराम के बाप, सेठ मूलचन्द को बेटे के इस खतरनाक इरादे का पता चल गया और उन्होंने ममती के कोठे पर जाकर उसके सामने दस हजार के नोट डाल दिए और कहा—"यह ले ले और मेरा बेटा मुझे लौटा दे !"

ममती ने सेठ के चरन छूते हुए कहा, "सेठजी, अपना रुपया अपने पास रखिये। मुझे आपकी दौलत नहीं चाहिए, आपके बेटे का प्यार चाहिए।"

तब सेठजी ने अपनी टोपी ममती के कदमों मे रख दी और कहा, "मैं तुझसे अपने बेटे की भीख माँगने आया हूँ। वह हमारा इकलौता लड़का है। अगर उसने यह शादी की तो उसकी माँ अपनी जान दे देगी। बिरादरी में हमारी नाक कट जायेगी।"

तब भी ममती नहीं मानी थी और फिर सेठजी ने अपना आखिरी दाँव इस्तेमाल किया था—"ममती, तू जानती है कि धनीराम की दो बहनें है, लक्ष्मी और सावित्री। अगर धनीराम ने तुझसे ब्याह कर लिया तो हमारी जात-बिरादरी मे कोई इसकी बहनों को स्वीकार नहीं करेगा। क्या तू यह चाहती है तेरे सुहाग की खातिर दोनो निर्दोष बच्चियाँ उमर-भर क्वारी बैठी रहें?"

तीर निशाने पर बैठा। सोच-विचार के बाद ममती ने कहा, "सेठजी, यह पाप मैं अपने सिर नहीं लूँगी। आपका बेटा आपको वापस मिल जायेगा।"

उस रात, जब धनीराम ममती को उसके कोठे से हमेशा के लिए ले जाने पहुँचा तो वहाँ घुँघरू खनक रहे थे, महफिल जमी हुई थी, और ममती मुजरा कर रही थी। धनीराम यह देखकर हैरान रह गया, "ममती!" उसने दूसरे कमरे मे बुलाकर कहा—"यह क्या हो रहा है?" ममती ने जवाब दिया—"मुजरा हो रहा है। यही तो इस कोठे पर हर रात को होता है!"

"मगर मैं तो तुम्हें ले जाने आया हूँ, ममती!"

"मैंने अपना इरादा बदल दिया है। अब मै तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी।"

"मगर क्यों?"

"यूँ ही। चाहो तो समझ लो, आवारगी मेरी घुट्टी मे पड़ी है।"

यह सुन कर धनीराम की नज़रों मे दुनिया घूम गयी। कुछ देर सकते मे रहने के बाद उसने कहा—"तुम ठीक कहती हो। जब तुम्हारे

खून ही में पाप है तो तुम कैसे बदल सकती हो, मुमताज बेगम ?"

'मुमताज बेगम' उसने दाँत पीस कर ममती को चिढ़ाने के लिए कहा था। मगर ममती ने जवाब दिया—"अब मैं मुमताज बेगम नहीं हूँ, माया देवी हूँ, और माया ही रहूँगी।" धनीराम इस जुमले का मतलब समझे बगैर ही चला आया था। जब वह सीढ़ियों से उतर रहा था तो उसके कानों में घुँघरू की आवाज पड़ रही थी।

उसने सोचा था—है न आखिर बेवफा तवायफ और वह भी मुसलमान ! मगर महफिल में जितने तमाशबीन बैठे थे वे यह देखकर हैरान हो रहे थे कि ममती नाच रही है और उसके होंठ पर गीत भी है पर आँखों से आँसू बह रहे हैं !

बाईस बरस के बाद आज भी उसके कानों में घुँघरुओं की आवाज गूंज उठी थी। कभी-कभी वह सोचता, 'उस बेवफा का ख्याल मेरे दिल से क्यों नहीं जाता ? अपनी पत्नी के होते हुए उसके बारे में सोचना भी मेरे लिए पाप है'; और यह सोच कर वह प्रायश्चित करने के लिए किसी धर्म के काम में कई हजार रुपया दान कर देता था।

उसकी सिर्फ एक ही बेटी थी, जिसका नाम उसने माया रखा था। और प्यार से वह उसे ममती कहता था। कभी-कभी वह सोचता था, मैंने अपनी फूल-सी बच्ची का नाम उस कम्बख्त के नाम पर क्यों रखा ? फिर वह दिल को तसल्ली देता कि उस ममती का नाम तो मुमताज बेगम था ! माया तो वह उसे बनाना चाहता था, मगर वह न बन सकी थी।

फिर एक दिन धनीराम ने अपने अखबार 'आगरा समाचार' में एक मुख्तसिर खबर पढ़ी कि तवायफ मायाबाई मरते वक्त अपनी एक लाख की जायदाद और जेवर एक अनाथ-आश्रम के नाम कर गई है। तब उसने अपने-आपको समझाया था कि वह कोई और होगी। उसका नाम तो मुमताज बेगम था। मगर इतने बरसों के बाद उसके कानों में ममती की आवाज गूँज रही थी—"अब मैं मुमताज बेगम नहीं हूँ, माया हूँ और माया ही रहूँगी।" इस जुमले का मतलब वह तब भी नहीं समझा था और अब भी नहीं समझ सका। वह एक नयी परेशानी

मे मुब्तला होकर आगरे की तवायफ के बारे मे भूल गया। उसकी बेटी माया जो लखनऊ युनिवर्सिटी में पढती थी, एक स्टूडेण्ट-स्ट्राइक के सिलसिले मे पकड ली गयी। धनीराम फौरन हवाई जहाज से लखनऊ पहुँचा और बेटी को जमानत पर रिहा करा के अपने दफ्तर मे लाया, उसका इरादा था कि बेटी को एक ऐसी जोरदार डाँट पिलाये कि वह यह सब राजनैतिक बकवासें छोड़ कर घर वापस आ जाए और माता-पिता की मरजी और मशविरे से किसी शरीफ और अमीर खानदान मे शादी करे। भला, सेठ धनीराम की बेटी को कौन मना कर सकता है!

सो, उसने बात शुरू करते हुए बेटी से पूछा, "ममती, यह लोग जो कहते हैं तू सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट हो गयी है यह सब झूठ है न ?"

"बिल्कुल झूठ है", ममती ने जवाब दिया। "भला आप जैसे पूँजी-पति की बेटी को ये पार्टियों वाले कब मेम्बर बनाते हैं! आप ही सोचिए, अगले महीने जब आपके शुगर मिल्स मे मजदूर हडताल करेंगे तो मुझ पर कौन एतबार करेगा ?"

"अगले महीने मेरे शुगर मिल्स मे हडताल होने वाली है ?" धनीराम ने घबरा कर पूछा। "तुझे किसने बताया ?"

"शज्जू ने।"

"शज्जू कौन ?"

"आप नही जानते उसे ? शुगर मिल्स वर्कर्स यूनियन का सेक्रेटरी शुजाअतअली खाँ !"

"मैं उस बदमाश को अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन ममती, तू उसे कैसे जानती है ?"

"वह बी० ए० मे मेरा क्लासफेलो था, पिताजी। मैं उससे इक-नामिक्स पढा करती थी," और वह नजरें झुका कर बोली—"मैं शज्जू को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ!"

"बहुत अच्छी तरह जानती हूँ, इसमें तेरा मतलब ?"

"मतलब यह है पिताजी कि अगले महीने हम ब्याह करने वाले हैं।"

उस घड़ी धनीराम की दुनिया उलट-पलट हो गयी। उसके कानों मे अजीब-सा शोर गूंज उठा—इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे, घुंघरुओं की झनकार!

एक ममती की आवाज, जो कह रही थी, "मैं मुमताज नहीं हूं—माया हूं—माया!"

एक ममती की आवाज, जो कह रही थी—"मैं माया नहीं हूं—मुमताज हूं!"

और फिर उसके दिमाग मे सारी दुनिया की घंटियां बजने लगीं। मन्दिरों की घंटियां, मिलों के सायरन, फायर इंजन का घड़ियाल और टेलीफोन की घंटी।

"हैलो"! उसने रिसीवर उठाकर पूछा, "कौन बोल रहा है?"

दूसरी तरफ से आवाज आई, "कौन धनीराम! अरे भई मैं हूं आलीशान खां।" "कहो खां साहब, क्या खबर है?" उसने पूछा। "खबर बड़ी खतरनाक है धनी! यह मजदूर-यूनियन वाले तुम्हारी शुगर मिल में बड़ी गड़बड़ करने वाले हैं। यह मुजाअत है न, उसके तीन गुरगे हैं, मुरारी लाल, हरबचन सिंह और पीटर डीसूजा। खुदा का शुक्र है, मेरे आदमियों ने तो उन्हें निकाल बाहर किया मगर अब वे तुम्हारे कारखानों में काम कर रहे हैं। होशियार रहना।"

"खां साहब, कल कहीं मिलो। मुझे तुमसे बहुत जरूरी मशविरा करना है। कुछ खाने-पीने का प्रोग्राम भी हो जायगा। मेरी बम्बई से बढ़िया शराब की बोतलें आई हैं।"

"सॉरी धनी! कल मैं एक कान्फ्रेंस की सदारत करने आगरा जा रहा हूं। मजहबी मामला है, उसे टाला नहीं जा सकता।"

धनीराम ने फोन रखा ही था कि उनका सेक्रेटरी दाखिल हुआ।

"सेठ साहब," उसने चैकबुक सामने रखते हुए कहा—"ताजमहल तोड़क-फोड़क मंडलवाले आये हैं। कहते हैं, आगरे में कान्फ्रेंस है।"

माया ने हैरत से पूछा—"ताजमहल तोड़क-फोड़क मंडल! मगर वह ताजमहल को तोड़-फोड़ क्यों करना चाहते हैं? वह तो प्यार

की निशानी है !"

सेठ धनीराम ने एक लाख की रकम लिखकर चैक पर दस्तखत करते हुए कहा—"प्यार की निशानी है, इसीलिए उसे नष्ट कर दिया जाएगा।"

ममती ने पूछा—"ये कौन लोग है ? क्या ये भी ताजमहल को ढाने आये है ?" शज्जू ने कहा—"नही ममती, ये तो हमारे जैसे ही लगते हैं। सुनो, ये क्या कह रहे है।" ममती ने कहा—"मगर यह तो गैर मुल्की टूरिस्ट है। इनकी जुबान हम कैसे समझ सकते है ?"

शज्जू ने कहा, "मुहब्बत की जुबान एक है—गौर से सुनो।"

एक हट्टा-कट्टा नौजवान जिसके सर के पीले बाल चाँदनी मे सोने की तरह लग रहे थे, अपनी महिला दोस्त से कह रहा था, "जोयावर, यह देखकर तुम्हें क्या याद आ रहा है ?"

वह बोली—"इवान, मुझे याद आ रहा है—वोल्गा के किनारे हमारे फार्म के गेहूँ के खेतों मे फसल तैयार खड़ी है। मैं और तुम दोनों फसल काटने वाले हार्वेस्टर-कम्बाइन चला रहे है। तुम मेरी तरफ देख रहे हो और मैं तुम्हारी आँखों मे झाँक रही हूँ। दरिया पर कोई मल्लाहों का गीत गा रहा है। नीले आसमान मे बगुलो की एक कतार उडी जा रही है और तुम्हे अपने पास देखकर मेरा दिल इतने जोर से धडक रहा है कि मुझे डर है, ट्रैक्टर की आवाज के बावजूद लोग मेरे दिल की धडकनो को सुन लेंगे···"

इनसे थोडी दूर पर एक और जोडा संगमरमर के तालाब पर अपना अक्स देखकर मुस्करा रहा है—

लड़की कह रही है—"जून" !

लडका कह रहा है—"मेरी माई डार्लिंग।"

लड़की पूछती है—"क्यों जून, कैसा लगता है ?"

लड़का कहता है, 'ऐसा लगता है जैसे टेम्स (नदी) की लहरें चाँदनी मे चमक रही हैं और हमारी लम्बी-पतली किश्ती आप-से-आप

धीरे-धीरे बहती चली जा रही है। दूर किनारे पर किसी काटेज में पियानो पर कोई बीथोवन की धुन बजा रहा है और तुम्हारा सर मेरी गोद में है। मैं तुमसे पूछ रहा हूँ क्यों मेरी, क्या तुम सचमुच मेरी हो ? और तुम कह रही हो हाँ जून, तुम्हारी हूँ—सिर्फ तुम्हारी। हमेशा के लिए तुम्हारी हूँ।"

मगर इन सबसे दूर, दो लम्बे-चौड़े आदमी जो नाक से बोलते थे, बाग के एक कोने में खड़े ताजमहल को ऐसी नजर से देख रहे थे जैसे सुनार किसी के गले में सोने का हार देखकर मन ही मन उसकी कीमत लगाता है कि अगर इतने रुपये में मिल जाए तो बुरा नहीं है।

एक कह रहा था—"ख्याल तो करो, अगर इसे हम आगरे से उठा कर हडसन दरिया के किनारे खड़ा कर दें, तो कितना मुनाफा हो सकता है ?"

दूसरे ने कहा—"कम से कम पाँच डालर टिकिट लगा सकते हैं, सिर्फ इसे देखने के लिए। हर रोज बीस-पच्चीस डालर की आमदनी तो हो ही सकती है।'

पहले ने कहा—"बाग में तालाबों के किनार और पेड़ों के नीचे कुर्सियाँ-मेजें लगाकर ओपन-ऐयर-कैफे बनाया जा सकता है। एक कप काफी की प्याली का दो डालर चार्ज कर सकते हैं।"

दूसरे ने कहा—'अरे यह तो कुछ भी नहीं। गुम्बद के नीचे जो मारबल का हॉल है वहाँ नाइट क्लब बनाया जा सकता है। जरा ख्याल तो करो, ऐसे रोमांटिक माहौल में जब ट्रम्पेटर डांस होगा तो कितनी भीड़ होगी ? अगर दाखिले का टिकट सौ डालर भी रखा जाए तो कम है।"

पहले ने कहा—"यह वाकई मिलियन डालर आइडिया है।"

दूसरे ने ठंडी सांस भरी—"लेकिन, कम्बख्त हिन्दुस्तानी इसे हमारे हाथों क्यों बेचने लगे ?"

पहले ने कहा—"इतने मायूस न हो, मुझे तो लगता है, मुफ्त उठा कर दे देंगे।"

दूसरे ने ताज्जुब से पूछा—"क्या कह रहे हो ? मैं तो इसके

लिए दस मिलियन डालर देने को तैयार हूँ तो भी सौदा महंगा नही ! भला मुफ्त क्यों देने लगे ?"

पहले ने कहा—"एक मिनट खामोश रहो और सुनो।"

खामोशी मे उन्होने भी वह आवाज सुनी जो ममती और शज्जू ने सुनी थी। संगमरमर पर फौलादी कुदाल पड़ने की आवाज। दो आवाजें थीं, एक मकबरे के उत्तरी किनारे से आ रही थी, दूसरी दक्षिणी कोने में। ताजमहल को दो तरफ से ढाया जा रहा था।

दूसरे ने कहा—"यह तो बहुत अच्छा है, यह खुद ही इसे ढा रहे है। मगर यह सीधे-सादे हिन्दुस्तानी, इतनी बड़ी पत्थर की इमारत को मामूली कुदालो से ढाना चाहते है ! इसके लिए तो डाइनामाइट और बुलडोजर चाहिए।"

उसके साथी ने उसे इत्मीनान दिलाया कि यह पत्थर की इमारत नही है, चाँदनी का बना हुआ एक ख्याली खिलौना है, कौमी प्रेम का एक सपना है जो ये हिन्दुस्तानी अपनी तारीख के हर दौर में देखते रहे हैं। यह ख्वाब गौतम बुद्ध ने देखा था, अकबर और शाहजहाँ ने देखा था, गांधी और अबुलकलाम आजाद ने देखा था और जवाहरलाल भी यही ख्वाब देख रहे हैं। इस सपने को तोड़ने के लिए यह कुदाल ही काफी है—इसलिए कि सपना मुहब्बत का है और यह कुदाल गहरी नफरत की फौलाद से बनी हुई है।

संगमरमर पर फौलाद की चोट पड़ने की आवाज गूँज रही थी।

"सुनो ममती !" शज्जू ने अपनी महबूबा से कहा, "इन मनहूस कुदालों की हर चोट कुछ कह रही है और हमारी मुहब्बत को सजाए-मौत सुना रही है।"

रात का सन्नाटा नफरत भरी आवाजों से गूँज रहा था —

"नवाखली, नवाखली
रावलपिंडी, रावलपिंडी
गुजरानवाला, लुधियाना

लुधियाना, गुजरानवाला
लाहौर, अमृतसर
अमृतसर, लाहौर
कानपुर, भरतपुर
भरतपुर, कानपुर
पटियाला, पानीपत
पानीपत, पटियाला
पानीपत, सोनीपत
यह दिल्ली है, यह कराची है
यह कराची है, यह दिल्ली है
यह अलीगढ है, यह मेरठ है
यह मेरठ है, यह अलीगढ है
यह मेरठ है, यह चन्दौसी है
यह चन्दौसी है, यह आगरा है
यह आगरा है, यह आगरा है
फिर दोनो तरफ से—उत्तर और दक्षिण से नारे गूँजे—

"ताजमहल को ढाएँगे,ढाएँगे हम ताजमहल को···"और हजारों कुदालें एक साथ हवा मे बुलन्द हो गयी। लेकिन वे तमाम कुदालें—सब्ज रग की कुदालें और भगवे रग की कुदालें हवा मे उठी की उठी रह गयी क्योकि उसी घडी, नफरत के लडाको और हत्या के सूरमाओ ने देखा कि उनकी नजरो के सामने ताजमहल चादनी मे पिघलता जा रहा है मानो वह संगमरमर का बना मकबरा न हो, मोम का बना एक पुतला हो, जो नफरत की आग मे खुद ही पिघला जा रहा हो। देखते ही देखते, वह गुम्बद, वह मीनार, वे मिहराबें, वे जालियाँ, वे तालाब, सरोद और शमशाद की वे कतारें, सब कुछ चादनी मे विलीन हो गया। चांदनी ने भी मुह मोड़ लिया और काले बादलो मे छिप गयी। अब ताजमहल नही था सिर्फ रात थी, अँधेरा था और सन्नाटा था। हवा की सांय-सांय थी और दूर दरिया के पास गीदड बोल रहे थे।

"यह सब इन काफिरो का कोई तिलिस्म है"—नफरत का एक

मुजाहिद, चिल्लाया ।

"यह सब इन मुसल्लो का कोई जादू है", इस ओर से एक सूरमा ललकारा ।

"चलो मुजाहिदो, कदम वढाओ ।"

"चलो सूरमाओ, आगे वढो ।"

"ताजमहल धरती मे छिप जायेगा। तो भी हम उसे खोद निकालेंगे ।"

'ताजमहल को पाताल ने भी ढूढ निकालेंगे और उसे नष्ट करके रहेंगे ।"

दोनो तरफ से हमलावर आगे वढ रहे थे। रास्ते म दो साये आकर खडे हो गए, सिर्फ दो साये, लेकिन पहाड की तरह अटल।

"तुम कौन हो ?" किसी ने ललकारा,

एक ने जवाब दिया, "मै अलीस ऐफेन्दी हूँ। जिस ताजमहल को तुम बरबाद करना चाहते हो, उसका नक्शा मैंने ही तैयार किया था।"

दूसरा बोला—"और मैं कन्नौज का मोहनलाल हूँ। जिस ताज-महल को तुम नष्ट करना चाहते हो उसकी दीवारों पर जितने नक्श-निगार है, सब मेरे बनाए हुए है।"

और फिर दो और साये।

एक ने कहा—"मैं तगरीनवीस अमानतखाँ शीराजी हूँ। कुरान शरीफ की जो आयतें ताजमहल की महराबो के गिर्द नक्श की गयी है, मेरी ही कलम की लिखी हुई है।" दूसरे ने कहा—"मैं मुलतान का छोटेलाल हूं। अमानतखाँ शीराजी के हाथ की लिखी हुई आयतों को संगमरमर पर पच्चीकारी से मैंने ही अमर किया है।"

दो और साये।

एक ने कहा— "मै इस्माइल ऐफेन्दी हूँ। जिन गुम्बदो को तुम शहीद करना चाहते हो, वे मैंने वनाये है।"

और दूसरे ने कहा—"और, मैं देहली का जमनादास हूँ। इन गुम्बदो पर जो कलश चमकते है वे मेरे हाथों के वनाये हुए हैं।"

भीड में से एक आवाज आई—"जादूगरो, तुमने ताजमहल को कहाँ छिपाया है ? बताओ वरना हम तुम्हें मार डालेंगे !"

और, अब वे छहो साये एक-दूसरे में घुलकर दो हसीन और अजीमुश्शान साये बन गये, जिनके कदम जमीन पर थे पर सर आसमान से बातें कर रहे थे। उनमें एक लडका था, एक लडकी।

लडके ने कहा—"तुम जालिमों की कुदालों से बचाने के लिए ताजमहल को हमने अपने दिल में छिपा लिया है।" और लडकी ने कहा—"जिस प्यार भरे दिल में झाँककर देखो, वहीं तुम एक ताज-महल पाओगे।"

लडके ने कहा—"दर-दर क्यों तलाश करते हो ? अपने ही दिलों में झाँककर देखो, बेवकूफो !"

और हर एक ने जब अपने मन के अंधेरे में झाँका तो वहाँ ताज-महल को झिलमिलाता हुआ पाया। हवा में उठी हुई कुदालें झुक गयीं। चाँदनी की गोद में ताजमहल फिर उभर आया मगर वे दोनों साये उसकी हिफाजत के लिए अब भी सामने खड़े रहे।

किसी ने सहमी हुई आवाज में पूछा, "तुम कौन हो ?"

लडके ने कहा—"मैं वह हूँ जिसने ताजमहल बनवाया है।"

लडकी ने कहा—"मैं वह हूँ जिसके लिए ताजमहल बनवाया गया।"

फिर सवाल किया गया—"मगर, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम", लडके ने मुस्कराकर कहा —"शज्जू !"

"मेरा नाम", लडकी ने नजरें झुकाकर कहा "ममती !"

फिर दोनों साये ताजमहल में समा गए और दुनिया को सोचता हुआ छोड गए कि यह शज्जू और ममती कौन थे ? धर्मेन्दर कुमार भल्ला और मरियम जमानी ? या शुजाअत अली खाँ और माया या शाहजहाँ और मुमताजमहल ?

ड्रेसिंग गाउन

धीरे, बहुत धीरे से, भीखू ने बाथरूम की खिड़की के टूटे हुए शीशे में से हाथ डालकर सिटकनी गिरायी। फिर भी रात के सन्नाटे में सिटकनी गिरने की ऐसी आवाज गूँजी कि भीखू समझा, अब तो सारा घर जाग उठा होगा। वह फौरन दीवार के साये में दुबककर बैठ गया। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।···ताले तोड़ते और छोटी-मोटी चोरियाँ करते उसे तीन महीने से ऊपर हो चुके थे। अब भी उसके दिल में पकड़े जाने का खौफ मिटा नहीं था। और फिर आज तो वह उस बंगले में चोरी करने आया था, जहाँ वह कई वर्ष गुजार चुका था। वह जानता था कि जिस घर का बच्चा-बच्चा उसे पहचानता है, वहां चोरी करने जाना खतरे से खाली नहीं। फिर भी, न जाने क्यों, आज उसके कदम आप-से-आप उसे नम्बर पचपन गौतम रोड तक ले आये थे।

सिटकनी की आवाज़ बाथ रूम में ही गूँजकर रह गई और घर के सारे लोग लिहाफों में लिपटे ज्यों-के-त्यों सोते रहे। जब कई मिनट तक न कोई रोशनी जली और न कोई आवाज़ आयी, तो भीखू के दिल की धड़कन कुछ मद्धिम पड़ गई। वह सँभलकर उठा और चुपके से बाथ रूम की खिड़की से घर में दाखिल हो गया।

इस बँगले का भूगोल भीखू को जबानी याद था। बाथ रूम से मिला हुआ बच्चों का बेड रूम है, जहाँ गोपाल और गीता और सबसे छोटा मुन्ना पड़े सो रहे हैं। इन्हीं के बीच में इनकी खिलाई मोटी गुलाबो!···इस कमरे के सामने ही श्री भूषन और श्रीमती भूषन का

बेड रूम है। फिर ड्राइंग रूम का बड़ा हॉल है, जिसके परले कोने पर डाइनिंग टेबुल रखी है और इसके पास ही महोगनी का बड़ा जहाजी साइज का साइड बोर्ड है, जिसकी दराजों में चांदी के कांटे-चम्मच, आइसक्रीम खाने की प्यालियां और चांदी का ही चाय का सेट धरा रहता है···इन्हीं चीजों की तलाश में आज भीखू इधर आया था।

इस हाल के परली ओर भी एक बेड रूम है, मगर भीखू को मालूम है कि उस कमरे में अब कोई नहीं रहता, न वहां कोई कीमती सामान है। बस दीवारों पर पुरानी तस्वीरें हैं, जो समय बीतने के साथ पीली पड़ चुकी हैं, कुछ संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और फारसी की किताबें धरी हैं। इनके अलावा एक हुक्का है, जो कई महीनों से ठण्डा पड़ा है।

भीखू ने शीशों में से आती हुई चांद की फीकी रोशनी में ही चीजें जमा करनी शुरू कर दीं। चांदी के चम्मच, कांटे, छुरियां, चांदी की आइसक्रीम की प्यालियां और चाय का सेट। धुंधलके में उसने देखा कि दीवार पर कागजों में लिपटे हुए बन्द बड़े-बड़े पैकेट रखे हैं, जिन्हें टटोलने पर मालूम हुआ कि इनमें लांड्री से ड्राईक्लीन होकर आये हुए सूट रखे हैं। शायद जल्दी में कोई उन्हें यहीं रखकर भूल गया था। भीखू ने सोचा कि हर सूट कम-से-कम चालीस या पचास रुपये में तो बिक ही जाएगा। इसलिए उनको भी उसने अपने लूट के माल में शामिल कर लिया। बच्चों के बेड रूम में से गुजरते समय उसे गोपाल और गीता की सोने की घड़ियां भी मेज पर से उठाकर जेब में डालनी थीं। अब प्रश्न यह था कि वह इस भारी सामान को किस चीज में डालकर ले जाए? कोई चादर मिल जाती तो काम बन जाता। एक गट्ठर में सब कुछ बांध लेता और उठाकर चलता बनता। चादर कहां से आये? श्री और श्रीमती भूषण का बेड रूम तो अन्दर से बन्द रहता था। बच्चों की चादरें-तौलियां वगैरह भी उनकी अलमारी में बन्द रहते थे। फिर उसे उस खाली कमरे का खयाल आया। उसने सोचा कि अगर्चे वहां सोने वाला जा चुका था, फिर भी वहां बिस्तर तो होगा ही।

इस कमरे के पिछवाड़े एक नीम का घना वृक्ष था। उसमें से चांदनी गुजर नहीं सकती थी। भीखू ने सोचा कि खिड़की पर परदे तो पड़े ही हैं। एक मिनट को रोशनी कर लूं। चादर लेते ही फिर अँधेरा कर दूंगा। कई वर्ष तक वह हर रात को पूरे दस बजे बटन दबाकर इस कमरे की रोशनी बुझाता रहा था। इसलिए उसका हाथ बिना किसी दिक्कत के बटन पर पहुँच गया। एक पल के लिए तेज रोशनी से उसकी आँखें चकाचौंध हो गयीं। फिर उसने देखा कि सामने वाली दीवार से उसे कोई घूर रहा है। यह एक बड़ी तस्वीर थी, एक बूढ़े आदमी की तस्वीर, गंजे सर के इर्द-गिर्द सफेद बालों की झलक, चमकीली आँखें, जो तस्वीर के परदे में भी दया और सहानुभूति से भरपूर नजर आती थीं। चेहरे पर झुर्रियाँ थीं मगर होठों पर मुस्कान!

आप-से-आप भीखू के हाथ नमस्कार के लिए उठ गये। मन-ही-मन उसने कहा, नमस्ते, पंडितजी! वह यह भूल गया कि इस कमरे में वह चादर लेने आया था, चोरी के माल का गट्ठर बनाने के लिए। वह इस घर में क्यों आया था, क्या करने आया था, वह सब भूल गया। अब वह बीस बरस का हट्टा-कट्टा जवान नहीं था, सात वर्ष का बच्चा था, उसके बदन पर फटे-पुराने चीथड़े थे और वह कनाट प्लेस में खड़ा जाड़े की रात में भीख माँग रहा था। इसी तरह उसने एक राहगीर के सामने हाथ फैलाया। उसके हाथ पर इकन्नी रखते हुए राहगीर ने पूछा :

"क्यों, बच्चे, तेरा बाप तुझे इस सर्दी में भीख माँगने को भेजता है? शर्म नहीं आती उसे?"

बच्चे ने उत्तर दिया, "बाप नहीं है।"

"और माँ?"

"माँ भी नहीं है।"

"चाचा, मामा, फूफा, फूफी कोई तो रिश्तेदार होगा?"

"कोई नहीं है।"

"तू रहता कहाँ है?"

"वहाँ।"

बच्चे ने एक पेड की ओर इशारा किया, जिसके नीचे कुछ साइ-किल-रिक्शेवाले अलाव जलाये आग ताप रहे थे।

"मेरे साथ चलेगा?"

"चलूँगा?"

···और बच्चा बूढ़े की अँगुली पकडकर साथ हो लिया। वह इस तरह पचपन नम्बर गौतम रोड मे दाखिल हुआ था। कोठी के अन्दर प्रवेश करते ही उसे अपनी छोटी-सी उम्र में पहली बार छत और चारदीवारी का अहसास हुआ था। बूढे ने अपने बेटे और बहू से कह दिया, "मैं इस शरणार्थी के बच्चे को ले आया हूँ, मगर यह नौकर की तरह नही रहेगा। मेरी औलाद की तरह रहेगा।"

फिर पडितजी ने देखा कि बच्चा सर्दी से काँप रहा है तो उन्होंने अपना काश्मीरी ऊनी ड्रेसिंग गाउन उसे उढ़ा दिया था। और ड्राइंग रूम में ही दीवान पर सुला दिया था। बच्चे को पहली बार नरम और गरम बिस्तर नसीब हुआ था।

बाहर ठंडी हवा सायँ-सायँ चल रही थी और रात के सन्नाटे को और भी गम्भीर बना रही थी। भीखू को ऐसा लगा, जैसे उस तस्वीर के मुस्कराते हुए होंठ हिल रहे हो, उससे कुछ कह रहे हों।

क्या है पंडितजी? मन-ही-मन भीखू ने प्रश्न किया?

पंडितजी नही, बाबा कहो, बेटा! तस्वीर खामोशी की भाषा में बोल रही थी।

क्या है, बाबा?

अफसोस की बात है कि जिस घर मे मैं तुम्हे बेटा बनाकर लाया, उसी घर में तुम चोरी करने आये हो!

अब मैं तुम्हे कैसे समझाऊँ, बाबा? भीखू ने मन-ही-मन उन तमाम परिस्थितियों को याद किया, जिनकी वजह से वह आज चोर बन गया था।

जब पंडित बालकृष्णजी उसे इस घर मे लाये थे तो कई वर्ष तक उन्होंने उसे सचमुच बेटे की तरह पाला था। पढना-लिखना सिखाया

था, स्कूल भेजा था। लेकिन फिर पंडितजी पर फ़ालिज का पहला हमला हुआ। उनका दाहिना बाज़ू और दायाँ टाँग बेकार हो गये।

केवल भीखू ही उनके पास बैठा रहता, उनकी सेवा करता। स्कूल जाना भी उसने छोड़ दिया। फिर एक दिन उसने सुना कि स्कूल से भी उसका नाम कटवा दिया गया है, क्योंकि पंडितजी के बेटे भूषण साहब का कहना था कि नौकरों के लिए ज्यादा पढ़ना-लिखना बेकार है। अब उसे खाना भी नौकरों के साथ मिलने लगा। बर्ताव भी नौकरों-जैसा होने लगा।

समय गुजरता गया और बूढ़े पंडितजी की हालत और भी बिगड़ती गयी। यहाँ तक कि सारा जिस्म फालिज की वजह से नाकारा हो गया। केवल आँखों में ही जान बाकी रह गयी। अब भीखू के साथ और भी बुरा सलूक होने लगा। दिन-रात काम करना पड़ता। तनख्वाह के नाम पर एक पैसा भी नहीं मिलता था, क्योंकि श्रीमती भूषन का कहना था कि आखिर हमने तुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है, फिर खाना देते है, रहने को जगह देते है।

आखिर पडितजी का एक दिन अन्तिम समय आन पहुँचा। उनकी टाँगें बिलकुल ठण्डी और बेजान हो गईं। भीखू ने घबराकर उन पर दो-तीन कम्बल और लिहाफ डाल दिये। फिर भी गरमी न आयी तो उसने पडितजी का वह पुराना ऊनी ड्रेसिंग गाउन भी उढ़ा दिया। उस ड्रेसिंग गाउन को देखकर पंडितजी के चेहरे पर मरते हुए भी मुस्कराहट आ गई। उनको उसमें लेटा हुआ एक छोटा-सा बच्चा याद आ गया। उन्होंने अपनी बुझती हुई आँखों से उस ड्रेसिंग गाउन की तरफ इशारा किया और फिर उनके फीके होंठ मुश्किल से हिले।

"यह तू ले लीजियो," यह कहा और चल बसे।

जिन्दगी में दूसरी बार भीखू यतीम हो गया।

बाद में जब एक दिन भीखू अपनी नौकरों वाली कोठरी में पड़ा सर्दी में काँप रहा था, तो उसे पंडितजी का आखिरी तोहफा याद आया, वह उस तोहफे को लेने के लिए ड्राइंग रूम में चला गया। वह ड्रेसिंग गाउन लेकर कमरे से निकल ही रहा था कि श्रीमती भूषण ने

उसे देख लिया। उन्होंने अपने पति से उसकी शिकायत की। चुनांचे वह चोरी के इलजाम में घर से निकाल दिया गया।

उन्होंने उसे चोर समझा और वह सचमुच चोर बन गया और आज उसी घर में चोरी करने आया था ! ···मगर पंडितजी की आँखें उससे कुछ कह रही थी, किसी तरफ इशारा कर रही थी।

उसने उधर मुड़कर देखा तो दीवार पर वही ड्रेसिंग गाउन लटकी हुई थी। अब वह समझ गया कि पंडित जी उससे क्या कह रहे है। बेवकूफ ! चुराना है तो काम की चीज चुरा ! चाँदी के चम्मचों से सर्दी नही जाएगी। उसके लिए यह ड्रेसिंग गाउन चाहिए !

वह ड्रेसिंग गाउन लेकर ड्राइंग रूम में वापस चला आया, जहाँ वह चाँदी के चम्मचों और कोटों वगैरह का ढेर लगा गया था। मगर अब उस चाँदी के सामान में वह पहली-सी चमक नही रही थी।

ऊपर का रोशनदान खुला हुआ था। बर्फीली हवा का एक झोंका उसकी कमीज के कालर में से होता हुआ उसके सारे जिस्म को कँपकँपा गया। बेख़याली में उसने बेअख्तियार ड्रेसिंग गाउन पहन ली। एकाएक उसका शरीर अजीब नर्मी और गर्मी के एहसास से भर-पूर हो गया। यह गर्मी ऊन की नही थी, मुहब्बत की गर्मी थी। एक अजीब थकान के एहसास से चूर होकर वह दीवान पर बैठ गया। उसे ऐसा लगा, जैसे एकाएक पंडित जी ने उसे अपनी बाँहों में समेट लिया हो। अब वह चोर नही था, नौजवान नही था, एक छोटा-सा बच्चा था, जो भूखा था और थका-हारा था, जिसे बड़ी सख्त नींद आ रही थी और जिसे ड्रेसिंग गाउन की मुलायम गर्माहट थपक-थपककर सुला रही थी।

कायाकल्प

फिल्मो की अपनी एक अलग दुनिया होती है । एक अलग भाषा होती है । फिल्मो के चरित्र दूसरे मनुष्यो से भिन्न होते है ।

एक तो 'नायक' होता है, यह या तो लम्बा होता है या ठिगना या दाढी-मूंछ सफाचट होता है या इसकी मूँछें हवाई जहाज की भाँति पतली और लम्बी होती है । नायक के दाढी कभी नही होती है ! वैसे नायिका को अथवा खलनायक को धोखा देने के लिये कभी-कभी नकली दाढी लगाकर नायक हकीम साहब या मौलाना या सरदार जी बन जाता है । नायक मुख्यतः केवल प्रेम करता है, कार्य नही करता । परन्तु कभी-कभी नायक डाक्टर, बैरिस्टर या टैक्सी ड्राइवर भी होता है लेकिन यह कार्य भी वह केवल प्रेमालाप के कारण ही करता है। डाक्टर इसलिये बनता है कि नायिका (अथवा इसके पति अर्थात् अपने सम्बन्धी) का इलाज कर सके। यदि बैरिस्टर हुआ तो अदालत में नायिका को हत्या के झूठे अपराध से बचा लेता है और टैक्सी ड्राइवर तो वह बना ही इसलिये था कि कोई सुन्दरी इसकी टैक्सी मे बैठे और वह मीटर डालना भूल जाये फिर नायिका टैक्सी मे अपना बटुआ (अपना दिल) भूल जाये !

एक 'नायिका' होती है, यह या तो दुबली होती है या फिर बहुत मोटी होती है ! नायिका कभी निर्धन नही होती इसलिए कि इसे हर सीन मे नवीन फैन्सी ड्रेस पहनना होता है ! दृश्य न० एक मे सलवार, कमीज, दृश्य नं० दो में भरत नाट्यम की साडी, दृश्य नं० तीन, चार मे चूडीदार पायजामा और काश्मीरी कमीज, दृश्य नं० पाँच मे राजस्थानी

ड्रेस, दृश्य न० छः में तीदी से छः इन्ची साडी और तोंदी से नौ इंच वैकनी-टाईप की चोली,दृश्य न० सात में मिनी स्कर्ट और चुस्त सुईटर ' 'यदि गलती से गरीब बाप की बेटी हुई तब भी नायिका कभी नायलोन की ओढनी और रेशमी घाघरा और चुस्त सलूका पहने होगी जिस पर ऊपर से श्वेत रंग के पैबन्द लगे होंगे ताकि दूर से मालूम हो जाये कि नायिका के बाप को खलनायक का कर्जा देना है और नायिका हर कुर्बानी देने के लिये तैयार है।

एक 'खलनायक' होता है यह या तो चारखाने की शर्ट-ब्रिजेस और घुटनों तक के राईडिंग बूट पहने होता है और इसके हाथ में एक हंटर होता है या वह एक काली शेरवानी और चूडीदार पायजामा पहने होता है। इसके सर पर टोपी धरी होगी है और इसके मुँह में एक लंबा सोने का सिगरेट होल्डर होता है। 'खलनायक' गर्मी में भी हाथों में सफेद दस्ताने पहने होता है और काला ओवर कोट (कालर ऊपर किया हुआ) और काली-फेल्ट-हैट जिसका छज्जा आखों पर झुका हुआ होता है ताकि पुलिस शिनाख्त न कर सके। यह इसलिये किया जाता है कि किसी धर्म अथवा वर्णो का हृदय सालनी न हो!

एक 'विम्प' होती है जिसे लेडी खलनायिका भी कहा जा सकता है। यह भी कभी-कभी! पहले जमाने में हीरोईन सीधे-सादे कपडे पहनती थी और इसकी समानता में 'विम्प' चुस्त उत्तेजित और फैशनेब्रिल कपडे पहनती थी परन्तु आज के युग में जब अभिनेत्रियों ने 'विम्प' जैसे कपड़े पहनने आरम्भ कर दिये हैं तो नायिका और विम्प में तमीज करना कठिन हो गया है। मुख्यत 'विम्प' डासर होती है लेकिन आजकल नायिकाएँ भी नृत्य करने लगी है (और किसी अवसर पर तो अपनी सालगिरह की पार्टी ही में डास प्रस्तुत कर देती है) ऐसी अवस्था में विम्प की मान्यता कम होती जा रही है। परन्तु फिर भी 'विम्प' वह होती है जो नायक को लुभाने के लिये नाज-नखरे और नैत्री के तीखे संकेतों से—'आजा-आजा गले लग—जा।' जैसा वह गीत गाती है। 'खलनायक' के नाइट-क्लब में नाचती-गाती है, 'खलनायक' से वेतन लेती है लेकिन हृदय से नायक को चाहती है और अन्त में

खलनायक जिस गोली से नायक को मारना चाहता है इस गोली से 'विम्प' की मृत्यु होती है परन्तु नायक के अङ्क मे—'आखिरकार मैंने तुम्हे पा ही लिया।' वह अन्तिम सांस के साथ कहती है और इसकी आँखें सदा के लिए बन्द हो जाती है।

वैसे फिल्म मे दूसरे भी कैरेक्टर होते है जैसे सहनायक जो मुख्यत: नायक का मित्र होता है। 'सहनायिका' जो नायिका की सखी होती है और सहनायक से प्रेम करती है। 'सह खलनायक' जो 'विलन' का 'मजिस्ट्रेट' या एक हास्य अभिनेता होता है और एक इसकी प्रेमिका अर्धांगिनी! मगर इस समय हम एक 'विम्प' की कहानी सुनाना चाहते है।

इसका नाम रानी बाला था। कभी नायिका हुआ करती थी परन्तु इधर कोई आठ-दस बरस से वह 'विम्प' कैरेक्टर कर रही थी। नायिका तो वह साधारण थी। कभी सी क्लास फिल्मों से आगे नही बढी। लेकिन विम्प बनकर उसने बडा नाम कमाया था। बाला का सुन्दर-सुकुमार, मुख्यत. इसका शरीर तो किसी मूर्तिकार का ढाला हुआ मालूम होता था। इस पर कपड़े भी इतने चुस्त पहनती थी, लगता था कि कपडे इसने पहने ही नही बल्कि इसके शरीर को इनके अन्दर ढाल दिया है। आँखें बड़ी-बड़ी और सुन्दर थी, बाल घने और घुघराले थे और वक्षस्थल अजन्ता-एलोरा की किसी मूर्ति की याद दिलाता था।

रानी बाला कितनी ही हीरोईनो से अधिक सुन्दर थी इसीलिये वे इसके साथ कार्य करना पसन्द नही करती थी परन्तु निर्देशक और निर्माता इसे अपनी फिल्मो मे लेना सफलता का प्रमाण समझते थे। कहा जाता था कि बी क्लास की हीरोईन के साथ रानी बाला को ले लो तो फिल्म ए क्लास मूल्यो पर बिकती है। नायक भी इसके साथ कार्य करना पसंद करते क्योकि इसकी महानता इतनी आकर्षक थी कि सेट पर इसके होते हुए कोई हीरोईन की ओर आंख उठाकर भी नही देखता था। इसके अतिरिक्त वह शोख मिजाज थी बातचीत बड़ी दिलचस्प करती थी और फिल्मी दुनिया के सम्बन्ध मे इसको हजारो लतीफे और चुटकुले याद थे।

रानी बाला के सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध था कि वह अपने प्राइवेट

जीवन मे इसके बिल्कुल विपरीत है जो वह फिल्मी पर्दे पर दिखाई देती है जो निर्देशक अथवा नायक इससे आवश्यकता से अधिक बेतकल्लुफ होने का प्रयत्न करते थे, इनसे वह कह देती थी—"आपने मेरे पति को नही देखा, वह 'बाक्सिंग' का चैम्पियन और पहलवान है ! सत्तर इंच का सीना है उसका।" और फिर इसके साथ कोई पेशदस्ती की जुर्रत न कर सकता था। वैसे इसका कथन था—"कैमरे के सम्मुख मुझसे जो चाहे करवा लीजिये, कपड़े उतरवा लीजिए, बोसा ले लीजिये, उस वक्त मैं आपकी नौकर हूँ मगर इसके बाद मेरे शरीर का स्वामी मेरा पति है।"

इसका पति बाक्सिंग-चैम्पियन था या पहलवान था किसी ने उसको देखा नही था। रानी बाला ने कभी किसी से इसका परिचय ही नही कराया था। इसका कहना था कि "मैं स्टूडियो को घर नहीं ले जाती न घर को स्टूडियो मे लाती हूँ।" समस्त फिल्म आर्टिस्टों मे वह एक थी जिसके साथ किसी ने नानी, दादी, माँ, मामू, भाई-बहन या फिर 'आया' को स्टूडियो मे आते न देखा था। न स्टूडियो वालों को वह कभी अपने घर आने की दावत या आज्ञा ही देती थी। जब शूटिंग हो टेलीफून कर दो। समय पर मोटर भेज दो। मोटर का हार्न सुनते ही रानीबाला अपना मेक-अप बक्स और अपना टिफन कैरियर हाथो मे लिये हुए बाहर आयेगी और मोटर मे सवार हो जायेगी। इसके घर मे कौन रहता है ? कितने आदमी रहते है यह किसी को नही ज्ञात था। इसका एक पति है शायद, इसका एक बच्चा या बच्ची भी है क्योंकि एक स्टूडियो ड्राइवर ने एक बार अन्दर से एक बचकाना आवाज 'बाई-बाई मम्मी' कहती हुई सुनी थी। परन्तु किसी पब्लिक जलसे में, मुहूर्त हो या प्रीमियर किसी ने इसके पति या पुत्र को इसके साथ न देखा था।

मगर अब इस किस्से को बरसो बीत चुके थे और रानी बाला के घर का राज-राज ही रहा था। लोग कभी-कभी रानी बाला की आयु का अनुमान लगाते थे कि इसको फिल्मों मे काम करते हुए कम से कम पन्द्रह वर्ष हो गये है; अब इसकी आयु कम-से-कम तीस-बत्तीस की

हो गई होगी। मगर कम्बख्त देखने में अब भी युवती लगती थी! एक बार एक पत्रकार ने इण्टरव्यू लेते हुए प्रश्न कर ही डाला.

' मिस रानी बाला, आपकी आयु क्या है?"

"आपको कितने वर्ष की लगती हूँ!"

"मुझे आप 19 या 20 वर्ष की लगती है!"

"बस, तो आप मुझे उन्नीस-बीस बरस का ही समझ सकते हैं।" ऐक्ट्रेस की कोई आयु नहीं होती है जितनी सिने-पर्दे पर नजर आती है वही सही है।"

रानी बाला सदैव मेक-अप करके स्टूडियो आती थी। बगैर मेक-अप के आज तक किसी ने इसे देखा ही नहीं था इस सम्बन्ध में भी वह मुख्य दर्शन का प्रदर्शन करती थी—"औरत घर में रहती है स्टूडियो में जो आती है वह ऐक्ट्रेस होती है और ऐक्ट्रेस को सदैव अपनी सूरत-शक्ल का ध्यान रखना चाहिये। मुझे इन ऐक्ट्रेसों से सख्त घृणा है जो रात-भर पार्टियों में मारी-मारी फिरती है और सुबह के समय उलूल-जुलूल, मनहूस सूरत बनाये स्टूडियो में आती है, बाल बिखराये हुए आँखों में कीचड़, दांत गन्दे, होंठ सूखे हुए और फिर इनका मेक-अप करने और बाल बनाने में दो-दो, तीन-तीन घंटे लगते है, तब वे इस योग्य होती हैं कि इनको कैमरे के सामने खड़ा किया जा सके!"

एक दिन जो सीन लिया जाने वाला था इसमें नायक और नायिका एक तालाब के किनारे प्रेम और अनुराग की बातें कर रहे हैं। 'विम्प' वहाँ चोरी-छुपे आती है और एक पेड़ के पीछे छुपकर इनकी बातें सुनकर चल रही है कि क्रोध में कुछ पीछे हटती है और धड़ाम से पानी में गिर जाती है। निर्देशक इस प्रकार 'विम्प' को कामेडी दृश्य में प्रस्तुत करना चाहता था और यह इसके कहने के विपरीत एक ऐसा अछूना और अनोखा 'टच' था।

"मिस बाला, आपको तैरना आता है? पानी पाँच फुट गहरा है।" निर्देशक ने स्टूडियो में बने हुये तालाब की ओर संकेत करते हुए कहा।

"मैं डूबूंगी तो आपको साथ लेकर!" रानी बाला ने शीघ्र उत्तर दिया और इस पर स्टूडियो में कहकहा पड़ा। रानी बाला को नाज

था कि आज तक इसने कोई दृश्य करने से इन्कार नहीं किया चाहे कितना ही कठिन हो। जहां जान का भय हो वहां भी वह किसी दूसरी ऐक्ट्रेस को 'डबल' के तौर पर काम करने की आज्ञा न देती थी। आग का दृश्य हो या दीवार पर से कूदने का दृश्य या घोड़े पर सवार होकर इसे सरपट दौड़ाना हो, हर दृश्य वह स्वयं ही करती थी। वह फिल्म लाइन मे उस समय आई थी जब नायक नायिका को तैरना, तलवार चलाना, मोटर चलाना और घूंसा चलाना सब कुछ सीखना आवश्यक था। पानी मे गिरने के लिए शीघ्र तैयार हो गई।

दृश्य से पूर्व निर्देशक ने ड्रेसमेन को कहा—"मिस रानी बाला के ऐसे ही दो चार ड्रेस और तैयार रखो शायद पहला शॉट ओ.के. न हो।"

दृश्यांकन समाप्त हुआ। रानी बाला बड़े अन्दाज से पीछे हटी। चेहरे पर क्रोध और जलन की आभा थी और यह आभा अन्तिम क्षण तक शेष रही जब तक वह पानी मे गिरी नहीं। गिरते-गिरते उसने अपने कैरेक्टर के अनुसार एक बनावटी दर्दनाक चीख मारी। तालाब मे गिरने के पश्चात भी जब इसका सर पानी से बाहर निकला तो इसने मुँह से कुल्ली का एक फौव्वारा निकाला और हीरो-हीरोईन की ओर क्रोध से झटका उठाया।

निर्देशक ने कहा—'कट'

अब रानी बाला को बाहर निकाला गया। सबने इतना सुन्दर दृश्यांकन करने पर मुबारकबाद प्रस्तुत किया परन्तु कैमरामैन ने कहा कि वह एक शाट और लेना चाहता है क्योंकि कैमरा घुमाने मे उससे कुछ त्रुटि हो गयी थी।

बदन सुखाया गया। ड्रेस बदला गया। दृश्य फिर अंकन हुआ। रानी बाला फिर पानी मे गिरी अबकी बार कैमरा ट्राली के चलने मे झटका लग गया! कैमरामैन ने कहा—"एक टेक और।"

चार बार रानी बाला ने ड्रेस बदला, बदन सुखाया, चार बार पानी मे गिरी, जब शॉट ओ० के० हुआ। वह पानी से निकलकर तौलिया लपेटते हँसती हुई अपने मेकअप रूम की ओर जा रही थी कि एक सहनिर्देशक ने दूसरे के कान मे कहा—"तुमने देखा ?"

"हाँ—देखा। मेकअप के साथ रानी बाला की जवानी का भरम भी!"

"मुझे तो लगता है चेहरे पर झुर्रियाँ पड चुकी है, मेकअप की तह इन पर चढी रहती है!"

"और बालो से जो पानी टपक रहा है इसका रग देखा? खिजाब लगाती है!"

अपने मेकअप रूम मे जाकर रानी बाला ने शीशे मे अपना चेहरा देखा तो इसको भी वही दिखाई दिया जिसकी बात असिस्टैण्ट डाइ-रेक्टर कर रहे थे। इसने शीघ्र कपडे बदलने के बहाने से मेकअप मैन और हेयर ड्रेसर लडकी दोनों को बाहर निकाल दिया।

पूरे डेढ़ घण्टे के बाद निकली तो मेकअप इसने स्वय कर लिया था, अब वह वैसी ही युवती लगती थी जैसी पहले। मगर वह कुछ घब-राई-सी थी सीधी मोटर मे जाकर बैठ गई और ड्राइवर से कहा:

"घर चलो, मेरी तबियत खराब हो रही है।"

अगले दिन रानी बाला स्टूडियो नही आई।

ज्ञात हुआ कि पानी मे भीगने मे इसको काली खाँसी हो गई है। तीसरे दिन ज्ञात हुआ कि इसे नमूनिया होने का भय है इसलिए डाक्टरो ने किसी शुष्क जलवायु वाले स्थान पर विश्राम करने की सलाह दे दी है, फिर खबर आई कि रानी बाला की तबियत ज्यादा खराब है, इलाज के लिए कई मास के लिये विदेश जाना पड रहा है।

रानी बाला के दृश्य की शूटिंग स्थगित कर दी गई। जितने मुँह उतनी बातें। कोई कहता था काली खाँसी और नमूनिया के इलाज का तो बहाना था असल में रानी बाला फिर से जवान होने के लिये बनारस के एक जोगी से कायाकल्प करवा रही हे। कोई कहता था, लन्दन मे कोई डाक्टर है जो प्लास्टिक सरजरी मे किसी भी अधेड उम्र की औरत को जवान बना देता है इसमें अपने रूप का आपरेशन करवाने गई है।

तीन मास पश्चात रानी बाला शूटिंग के लिए स्टूडियो वापिस आई तो वह पूर्व से अधिक सुन्दर थी। प्लास्टिक सरजरी का आपरेशन या कायाकल्प या जो कुछ जादू या टोटका इसने कराया था वह पूर्ण

सफल सिद्ध हुआ था क्योंकि अब इसकी आयु अठारह-उन्नीस तक ही लगती थी, इससे अधिक नही।

एक प्रसिद्ध कैरेक्टर ऐक्टर ने, जो बड़ा धाकड़ था और जिसकी रानी बाला से बड़ी बेतकल्लुफी थी, रानी बाला से कहा—"रानी, अब तो मेरा भी जी प्रेम करने को चाहता है! अब तुम मुझे भाई साहब न कहा करो।" रानी ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"तो अब से मैं आपको काका जी कहा करूँगी।" इस पर एक अच्छा-खासा ठहाका गुञ्जित हुआ और कैरेक्टर ऐक्टर अपना-सा मुँह लेकर रह गया! हैरानी इसे यह थी कि रानी बाला इससे तो स्वतन्त्रतापूर्वक बात करती थी 'आप' तो इसने आज तक न कहा था, क्या वह कायाकल्प के बाद अब सच-मुच अपने-आपको कम आयु वाली छोकरी समझने लगी है?

लोगों ने रानी बाला में एक और परिवर्तन देखा। पहले वह बड़ी बातूनी और हसोड़ होती थी फुलझड़ियाँ, चुटकुले, मजाक इसकी जबान की नोक पर रखे रहते थे लेकिन अब वह एकदम संजीदा हो गई थी। कोई मजाक करता भी तो केवल एक हल्की मुस्कुराहट से इसका उत्तर दे देती थी।

किसी ने कहा—"रानी, तुम तो अब बड़ी बदल गई हो। सुन्दरता के साथ क्या शान्ति-स्थिरता का भी आपरेशन कराया है?"

रानी की अनुपस्थिति में स्टूडियो वाले आपस में बातें करते, एक कहता—"रानी तो बड़ी सीरियस हो गई है।"

दूसरा कहता—"मगर सूरत तो देखो, अठारह-उन्नीस वर्ष से अधिक नही लगती!"

तीसरा कहता—"परन्तु इसकी आयु अब चालीस वर्ष से कम न होगी। मैं स्कूल में पढ़ता था तब रानी बाला की फिल्म देखी थी।"

चौथा कहता—"इसी विचार ने तो इसे इतना शान्तिपूर्ण बना दिया है। हर समय बेचारी सोचती रहती है। देखने में तो मैं जवान हो गई हूँ परन्तु मेरी आयु तो सब को मालूम है। यह विचार किसी को कभी शान्तिपूर्ण बना सकता है।"

रानी बाला अब भी घर से मेकअप करके आती थी। स्टूडियो

वालों ने अनुमान लगाया कि इसका मेकअप पहलेसे अधिक गहरा होता है। एक मेकअप वाले ने कहा—"मैं तो समझता हूँ न आपरेशन कराया है न कायाकल्प, यह सब मेकअप का जादू है। जिसने रानी को जवान बना दिया है किसी दिन पाईण्ट पाउडर, रूज की तह उतार कर देखो, इसके नीचे क्या है।"

असिस्टेण्ट डाइरेक्टर ने यह बात निर्देशक से कही। इसने मजाक-मजाक में प्रोड्यूसर को बताई। तय यह हुआ कि इस बार क्लाइमेक्स की आउट डोर शूटिंग की जायें तो रानी बाला को फिर किसी झील या तालाब में धकेल दिया जाये फिर देखें मेकअप ढलकर क्या निकलता है?"

आउट डोर शूटिंग को गये तो इस दिन रानी बाला बड़ी प्रसन्न थी, कहने लगी—"धन्य है, स्टूडियो की चार दीवारियों से निजात मिली। खुली हवा में सांस तो ले सकेंगे।"

निर्देशक ने कहा—"रानी, तुम तो ऐसी बातें कर रही हो जैसे आज पहली बार आउट डोर को आई हो। हर बरस कम से कम दो-तीन मास तो तुम आउट डोर जाती ही हो।"

रानी ने उत्तर दिया—"मगर इस आपरेशन के बाद तो मैं प्रथम बार ही आई हूँ!"

झील बहुत सुन्दर थी; सुना था, बड़ी गहरी भी है मगर रानी को तैरना आता था। इसने तो एक बार एक डूबते हुए हीरो की भी रक्षा की थी।

सो, निर्देशक ने बताया—"मिस रानी, दृश्य यह है कि खलनायक आपके पीछे दौड़ा आता है। आप अपनी आबरू बचाने के लिए झील में कूद पड़ती है, जब डूबने लगती हैं तो आप हाथ-पांव मारती है। चीखती-चिल्लाती हैं। आपका स्वर सुनकर नायक आता है और झील में छलांग लगा देता है मगर इस समय तक आप डूब गयी है। वह आपकी लाश को पानी से निकालता है।"

"यह झील गहरी तो नहीं है?" रानी बाला ने पानी की ओर देख कर कहा।

निर्देशक ने हँसकर उत्तर दिया—"हयादार के लिए तो चुल्लू भर पानी भी अधिक होता है! मगर आपको तो तैरना आता है!"

रानी बाला ने कहा—"आता तो है" मगर जैसे इसे पूरा विश्वास न हो—"बात यह है कि पानी में उतरे बहुत दिन हो गये हैं मगर आप लोग किनारे पर ही उपस्थित रहेंगे न?"

यह तो हम रहेंगे ही। निर्देशक ने विश्वास दिलाया, "यदि तनिक भी खतरा हो तो आप आवाज दे दीजिएगा।"

कैमरा लगाया जा रहा था तो एक सह-निर्देशक ने सह-कैमरा मैन से कहा—"चलो, आज रानी बाला की जवानी का राज आउट हो जायेगा। झील का पानी मेकअप की सब तहों को धो देगा।"

रिहर्सल के लिये रानी बाला और खलनायक दोनों झील के निकट दौड़कर आये। परन्तु निर्देशक ने कहा—"बस-बस, इतना अधिक है। अब ठीक ही करते हैं। मैंने दो कैमरे लगा दिये हैं एक लांग शाट के लिए ताकि रि-टेक न करना पड़े!"

दोनों कैमरे चालू किये गये। निर्देशक ने कहा—"क्लैप!" सहायक चिल्लाया—"*भोला शिकार—दृश्य नं० एक सौ तेरह। शाट नं० सात —टेक न० एक।*" फिर क्लैप बजाई और कैमरे के आगे से हट गया।

निर्देशक लाउडस्पीकर में चिल्लाया—"ऐक्शन।"

पेड़ों के पीछे से रानी बाला भागती हुई आई। वह वास्तव में ऐसी भागती हुई आ रही थी कि सचमुच उसकी शान्ति और अस्तित्व खतरे में मालूम होती थी। पीछे-पीछे भयानक मूँछ वाला खलनायक। इस आयु में भी रानी बाला की टाँगों में बला की फुर्ती थी। वह सीधी झील की ओर गई, किनारे पर एक बार झिझकी, पीछे मुड़कर देखा, खलनायक अब बिल्कुल निकट आ चुका था। रानी बाला ने झील में छलांग लगा दी। खलनायक किनारे पर ठिठककर रह गया, इसको दृश्य में इतना ही करना था।

रानी बाला कितनी बला की नेचुरल ऐक्टिंग कर रही थी! दोबारा इसने गोता खाया दोबारा उभरी। हाथ बाहर निकाल कर चिल्लाई —'*बचाओ-बचाओ मुझे बचाओ।*' जैसे बिल्कुल डूब ही रही हो!

निर्देशक ने नायक को संकेत किया। नायक झील की ओर भागा—"मालती-मालती, मैं आ रहा हूँ।" यह कहकर वह भी छलांग लगाकर झील में कूद पड़ा। इससे पूर्व कि नायक तैरता हुआ इसके निकट पहुँचे रानी बाला का एक हाथ पानी से एक बार फिर निकला, फिर डूब गया। परन्तु नायक अब वहाँ पहुँच चुका था। इसने गोता लगाया और जब बाहर निकला तो रानी बाला को सहारा दिये हुये था! झील के निकट जब पानी कम हुआ तो नायक ने नाटकीय ढंग से रानी बाला को हाथों में उठा लिया। ऐक्टिंग करते हुए भी नायक महसूस कर रहा था कि रानी बाला का भार कम पड गया है! रानी बाला बला का अभिनय कर रही थी। साँस रुकी हुई थी। हाथ नि.शान्ति लटके हुए थे!

"देखो!" एक सहायक ने संकेत करते हुए दूसरे के कान में कहा। रानी बाला का सारा मेकअप ढल गया था। और आश्चर्य की बात यह थी कि नीचे से झुर्रियाँ दैदीप्यमान नहीं हुई थी वरन् एक और भी यौवनीय रूप उत्कर्ष हो गया था।

"कट-कट!" डायरेक्टर चिल्लाया—"वण्डरफुल, रानी, आज तो तुमने कमाल कर दिया!"

नायक चिल्लाया—"मगर यह तो मूर्छित हो गई है।"

पचास मील प्रति घंटे की गति से दौड़ती हुई स्टूडियो की कार बाला के घर पहुँची तो 'धड़ाक्' से दरवाजा स्वयं खुल गया और एक औरत की आवाज आई।

"बेबी, आ गई तो?"

स्टूडियो के आदमी मूर्छित बाला को लेकर अन्दर पहुँचे तो देखा, एक बूढा फालिज का मारा आदमी पलंग पर पड़ा हुआ है और इसके निकट ही एक अधेड आयु की खिचड़ी बालों वाली सुन्दर महिला बैठी है, जिसकी सूरत रानी बाला से मिलती-जुलती है, अवश्य इसकी माँ होगी!

"क्या हुआ मेरी बेबी को?" यह कहकर माँ उस सोफे की ओर दौड़ी जहाँ रानी बाला को लिटा दिया गया था।

इतने में स्टूडियो के दूसरे व्यक्ति, एक निर्देशक को लेकर आ गये थे। इसने नाड़ी पर हाथ रखते हुए सर हिला दिया—"सॉरी, यह तो कब की मर चुकी है ?"

विस्तर पर पड़ा हुआ रुग्ण मनुष्य न गर्दन हिला सकता था न जबान परन्तु वह शायद सुन सकता था। इसकी खुली हुई आँखों में दो आँसू उमड़ आये।

रानी बाला की माँ बड़ी धैर्यवान् स्त्री थी, उसने केवल इतना पूछा—"यह कैसे हुआ ?"

निर्देशक ने उत्तर दिया—"झील में डूबने का दृश्य था मगर हम समझते थे वह तैरना जानती है···!"

रानी बाला की माँ शायद इस शोक से पागल हो गई थी, अपने हाथों को देखते हुए एक अजीब भयानक अन्दाज में बोली, "मैंने अपने हाथों से अपनी बेबी को मार डाला।" सब लोग एक दूसरे का मुह ताक रहे थे कि उसने कहा—"यह खबर कहीं न छपे।"

निर्देशक ने कहा—"वह तो छपवानी ही पड़ेगी, पिक्चर की शूटिंग कैन्सिल होगी तो लोग प्रश्न करेंगे ही···"

रानी बाला की माँ एक निर्णयात्मक स्वर में बोली—"पिक्चर कैन्सिल नहीं होगी।"

"परन्तु कैसे ? रानी बाला के स्थान पर कार्य कौन करेगा ?"

"मैं करूँगी !"

"आप ? रानी बाला की माँ ?"

"मैं रानी बाला की माँ नहीं हूँ, मैं रानी बाला हूँ।"

खज़ाना

डाकू और किसान में क्या फर्क है ? रधिया ने सोचा। किसान जब सूखे से, महाजन से और जमीनदार से मजबूर हो जाता है तो वह डाकू हो जाता है। कंधे पर हल लेकर चलने के बजाय अब कन्धे पर लाठी रखता है, बरछा रखता है, आगे जाकर बंदूक रखता है। कन्धे का बोझ वही रहता है। पहले उसकी नजर आसमान पर लगी रहती थी और हर वक्त यही सोचता था कि कब काली-काली बदरी आएगी और उसके खेतों में जलथलकर देगी। साथ ही दिल में यह धुकड़-पुकड़ लगी रहती है कि इस बरस भी बारिश न हुई और सूखा पड़ा तो क्या होगा ? अब जंगल के पेड़ों और पत्तों के पीछे से उसकी नजर सड़क पर लगी रहती है जो धूल खाती, धूल उड़ाती एक शहर से दूसरे शहर को जाती है।

किसान के जीवन में जो अहमियत आसमान को है वही डाकू की जिन्दगी में सड़क की है। किसान आसमान की तरफ देखता है, डाकू सड़क की तरफ। आसमान से सिर्फ धूप बरसेगी, लू ही चलेगी या बरखा होगी या ठंडी-ठंडी हवा चलेगी—इस पर किसान की खुशहाली का दारोमदार है। सड़क पर सिर्फ मुफलिस किसानों की बैलगाड़ियाँ गुजरेंगी, मुसाफिरों से लदी हुई (मगर सब मुसाफिरों की जेब खाली) एस०-टी० की बस गुजरेगी, या अपनी जीप में कोई ठेकेदार गुजरेगा जिसकी हर जेब में सौ-सौ के नोट बरामद होंगे ? डाकू की खुशहाली का दारोमदार इस पर है।

रधिया को डाकू बने सिर्फ चंद ही महीने हुए थे। इसलिए अपने साथियों शामसिंह और हरनाम की तरह वह अब तक इसका आदी

नहीं हुआ था। वे तो जब बातें करते थे ऐसा लगता था कत्ल करना उनके बायें हाथ का काम है। रधिया ने उन दोनों में से एक को भी कत्ल करते हुए नहीं देखा था। ज्यादा-से-ज्यादा दो-एक साहूकारों को उन्होंने मार-मार कर अधमरा कर दिया था क्योंकि वह अपनी तिजोरी की चाबियां नहीं दे रहे थे। लेकिन वे हमेशा ऐसी बातें करते थे जैसे कत्ल करना उनके बायें हाथ का काम हो। "अरे वह दिन याद है जब मैंने उस जमींनदार का सर भुट्टा-सा उड़ा दिया था," एक कहता और दूसरा जवाब देता, "वह रात भूल गए जब मैंने पूरे गांव का सफ़ाया कर दिया था ! सफ़ाया, क्योंकि वहाँ के किसी आदमी ने हमारे खिलाफ मुख्बरी की थी।" और रधिया को कभी-कभी ऐसा लगता था जैसे वे उस पर अपना रौब डालने के लिए ऐसा कह रहे हों, सचमुच उन दोनों ने कोई खून न किया हो।

रधिया डाकू कैसे बना इसकी भी एक लम्बी कहानी थी। जो हर वक्त उसके दिमाग में घूमती रहती थी। अभी सतरह बरस का भी नहीं हुआ था कि बाप ने शादी कर दी। मालती उस वक्त तेरह बरस की थी। एक बरस तक उसके बाप ने मुकलावा नहीं किया। रधिया शादीशुदा होने पर भी कुंवारा था। गांव के दूसरे लड़के उसको छेड़ते तो उसको बहुत बुरा लगता। अपने बाप से वह कहता, "लड़की को अब घर ले आना चाहिए।" बाप जवाब देता, "अपनी माँ से पूछ।" माँ से यही बात कहता तो वह हँसकर कहती, "ऐसी बेसबरी भी क्या है ? कच्चा अमरूद खाने से पेट में दर्द हो जाता है।" माँ-बाप यही कहते रहे और हैज़े से मर गए। और रधिया दुनिया में अकेला रह गया। तब तो उसको खुद ही मुकलावे के लिए जाना पड़ा। मालती के बाप से कहा, "घर की खैर-खबर रखने के लिए कोई औरत तो चाहिए।" और सो मालती उसके घर आ गई। और रधिया को ऐसा लगा जैसे उसके सूखे जीवन में बाहर आ गई हो।

मालती तो घर आ गई लेकिन अब रधिया को मालूम हुआ कि बाप ने जमीन, बैल, घर सब गिरवी रखकर कितना कर्ज लिया हुआ था। साहूकार ने हुंडियाँ दिखाईं तो रधिया के पैरों तले जमीन सरक

गई। एक-एक करके सब जमीन, हल, बैल वगैरह बिक गये। रधिया ने एक-दूसरे और मुकाबलतन खुशहाल किसान के यहाँ एक खेत मजदूर की नौकरी कर ली। दिन-भर मेहनत करता तो शाम को बारह आने मिलते। लेकिन फिर भी रधिया को घर आने में खुशी होती क्योंकि मालती उसके इन्तजार में दरवाजे पर खडी रहती। रधिया को देखते ही मालती मुस्करा उठती और रधिया को ऐसा मालूम होता कि उसे दुनिया का सबसे बड़ा खजाना मिल गया है।

फिर एक दिन मालती ने कहा कि वह माँ बनने वाली है और रधिया का मन नाच उठा। उसका जी चाहा कि बिरादरी में मिठाई तक्सीम करे। लेकिन जब खर्च का खयाल किया तो दिल मसोसकर रह गया। उसके बाद काम खत्म करते ही वह घर आ जाता और हर तरह से मालती की दिलजोई करता। वह पनघट से पानी भरकर लाती थी। मगर रधिया ने मना कर दिया। "मैंने सुना है ऐसी हालत में औरतों को बोझा नहीं उठाना चाहिए।" खेत से आकर वह खुद ही घड़े भरकर घर में लाता। लोग उस पर हँसते भी कि औरतों वाला काम कर रहा है, मगर वह बुरा न मानता। उलटा खुश होता। हँस-कर कहता, "औरतों वाला काम तो मेरी मालती कर रही है। तुम देख लेना बेटा जनेगी।" और रात को जब बराबर-बराबर खाट पर लेटते तो वह मालती का हाथ सख्त, खुरदरे हाथ में लेकर कहता, "तुम देखना हमारा बेटा बड़ा भाग्यवान होगा। उसके पैदा होते ही हमारे दलिद्दर दूर हो जाएँगे।" और मालती कहती, "बड़ा बोल न बोलो—भगवान से डरो।"

मालती सच कहती थी। सातवाँ महीना था कि उनके इलाके में ऐसा सूखा पड़ा जैसा सन् बयालिस में पड़ा था। सावन, भादों के महीने गुजर गये और बारिश के नाम की एक बूँद न गिरी। आसमान पर बादलों का नाम-निशान नहीं। न सिर्फ खेतियाँ सूख गईं बल्कि कुओं में पानी की बूँद न रही। जिस खेत पर रधिया काम करता था वह भी सूख गया। वहाँ से जवाब मिल गया। पाँच-सात दिन तो जमा जोड़ पर गुजारा किया। मगर बनिये ने अनाज की कीमत दुगनी कर दी थी।

कब तक चलता ? चंद रोज घर के बरतन-भांडे बेचकर काम चलाया। इतने में सरकार ने काल के मारे हुए लोगों की मदद करने के लिए एक बंध बनाना शुरू किया। पहले तो रधिया ही वहाँ काम करता था। शाम को पचास नये पैसे कमाता मगर बंध गाँव से पाँच मील पर था। इसलिए मालती को भी वह वहाँ ले गया और दोनों बंध के करीब ही एक झोपड़ी में रहने लगे। पचास पैसे में दोनों का गुजारा कैसे होता ? सो मालती ने भी ईंटें ढोने की नौकरी कर ली। अब रधिया ने उसे यह कहकर नहीं रोका कि "ऐसी हालत में औरतों को बोझा नहीं उठाना चाहिए।"

और सो एक दिन मालती धूप में काम कर रही थी कि उसके आँखों के सामने कई सूरज नाचने लगे, फिर एकदम अँधेरा छा गया और वह बेहोश होकर गिर पड़ी। रधिया को मालूम हुआ तो वह भागा हुआ गया। उठाकर झोपड़ी में ले गया। मालती को होश आया तो उसके चेहरे पर तकलीफ के बावजूद एक अजीब-सी पीली-सी मुस्कराहट थी। कहने लगी, "लगता है मेरा वक्त करीब आ गया है। मगर मुझे खून आ रहा है।" और यह कहकर वह फिर बेहोश हो गई। रधिया ने हाथ लगाया तो बदन बुखार से जल रहा था।

रधिया हर तरफ दौड़ा। एक दाई मिली। उसने कहा, "यह मेरे बस में बाहर है। कोई डाक्टर लाओ।" एक डाक्टर मिला। उसने कहा, "बदन में जहर दौड़ गया है। अस्पताल में ले जाओ और किसी बड़े डाक्टर को दिखाओ।" तब किसी ने उससे कहा, "तुम डाक्टर बाबू के पास क्यों नहीं ले जाते ? उन्होंने करीब ही रिलीफ कैम्प में अस्पताल खोल रखा है।"

सो रधिया मालती को डाक्टर बाबू के पास ले गया। देखा कि बीमारों की एक लम्बी कतार लगी है। मालती को बीमारों की क्यू में बैठाकर रधिया आगे चला गया। देखा, डाक्टर बाबू एक नौजवान आदमी है जो कुछ मरीजों को दवा दे रहा है, कुछ को दूध पिला रहा है और चंद को दवा के बजाय पुड़िया में बाँधकर कुछ पैसे दे रहा है कि उनके मर्ज का यही इलाज है।

"डाक्टर बाबू", उसने चिल्लाकर कहा।

डाक्टर बाबू ने एक लमहे के लिए उसकी तरफ देखा और कहा, "लाइन मे खड़े हो जाओ। जब तुम्हारी बारी आएगी तब ही देख सकता हूँ।"

और रधिया ने चिल्लाकर कहा, "डाक्टर बाबू, इतनी देर मे मेरी बीवी मर जाएगी।" और यह सुनकर डाक्टर बाबू उठ खड़े हुए।

ऑपरेशन कामयाब हुआ। डाक्टर बाबू ने रधिया से कहा— "मुबारक हो, बेटा हुआ है।"

रधिया की आँखो मे आँसू आ गये और वह डाक्टर बाबू के पाँवो मे गिर पड़ा। "डाक्टर बाबू, तुम सचमुच भगवान हो।"

"भगवान क्या मैं तो इन्सान बनने की कोशिश कर रहा हूँ।" उन्होंने उसे उठाते हुए कहा, "तुम्हारा बेटा सही-सलामत है मगर तुम्हारी बीवी की हालत खतरनाक है। खून देना पड़ेगा।" रधिया ने कहा, "मेरा खून निकाल लीजिए।"

डाक्टर बाबू ने उसका खून निकालकर टेस्ट किया लेकिन मेल नही खाया। डाक्टर बाबू के पास खून का प्लाज़मा जो बोतलो मे महफूज था उसमे भी जिस टाइप का खून दरकार था वह नही मिला। कई व्हालेण्टियरो का खून टेस्ट किया गया लेकिन वह भी मैच नही हुआ। आखिरकार डाक्टर बाबू ने अपने असिस्टेंट से कहा, "मेरा खून टेस्ट करके देखो।" और असिस्टेंट ने थोडी देर मे कहा, "सर आपके खून का टाइप वही है।"

और सो रधिया ने उमर मे पहली बार यह करिश्मा देखा कि किस तरह एक इन्सान अपना खून देकर एक-दूसरे इन्सान को जिन्दगी देता है। डाक्टर बाबू और मालती बराबर-बराबर लिटा दिए गए थे। एक सुई डाक्टर बाबू के बाजू मे लगी हुई थी और एक उसकी बीवी के। और इन सुइयों के दरमियान एक रबड़ की नली थी। एक-एक कतरा करके खून डाक्टर बाबू की रगों मे निकल रहा था और मालती के जिस्म में जा रहा था। मालती के बेजान जिस्म मे नई जान पड रही थी।

रधिया दोनों पलगों के बीच में एक स्टूल पर बैठा था। खामोश। कभी इधर देखता था कभी उधर।

डाक्टर बाबू ने मुस्कराकर उससे पूछा, "क्या सोच रहे हो ?"

उसने कहा, "जी···मैं···सोच रहा हूँ यह सब आप क्यो कर रहे है ?"

डाक्टर बाबू ने कहा, "भई यह तो मेरा इन्सानी फर्ज है।"

"मगर यह फर्ज तो और किसी ने नही निभाया। आप क्यों निभा रहे हैं ?"

"यह समझो मैं मजबूर हूँ।"

रधिया कुछ देर खामोश रहा। कतरा-कतरा खून डाक्टर बाबू के बदन से उसकी बीवी के बदन में जा रहा था और अब उसकी आँखो मे जान पड़ती दिखाई देती थी। रधिया सोचता रहा, अभी यह नलकी हटाई जाएगी। यह अनोखा रिश्ता उसमें और डाक्टर बाबू मे कायम हुआ है वह टूट जाएगा। अगर अब यह सवाल न किया तो फिर कभी मौका नही मिलेगा।

उसने पूछा, "डाक्टर बाबू, आप तो पढ़े-लिखे आदमी है। बताइए यह दुनिया कब बदलेगी ? और कैसे बदलेगी ?"

डाक्टर बाबू ने सोचकर जवाब दिया, "बदलने को तो यह एक कागज की परची से बदल सकती है। कब का फैसला तुम करोगे ?"

रधिया की कुछ समझ मे नही आया। डाक्टर बाबू क्या कह रहे हैं। इतने मे उनके असिस्टेंट ने सुई उनके बाजू मे से निकाल ली। और मालती के बाजू मे से भी। डाक्टर बाबू काफी कमजोर हो गये थे। और कमजोरी से उनकी आँखें बन्द हुई जा रही थी लेकिन रधिया ने देखा कि उनके चेहरे पर एक अजीब मुस्कराहट है।

दो दिन के बाद रधिया, मालती और अपने बच्चे को लेकर घर लौट आया लेकिन इस अर्से मे डाक्टर बाबू से उसकी मुलाकात नही हुई। सुना किसी और इलाके मे बिमारी फैल गई है और वह वहाँ चले गए है। और अब रधिया के सामने बीवी का ही नही बच्चे का भी सवाल था। सूखा अब भी गाँव पर छाया हुआ था। अनाज की कीमतें

अब भी बढ़ती जा रही थी। रिलीफ के लिए जो बंध बना था वह तैयार हो गया था। और अब काल के मारे गांव से दस मील दूर सडक बना रहे थे। और सडक के दोनों तरफ मैदान मे पडे हुए थे। मालती और बच्चे को इस हालत मे रधिया न वहाँ ले जा सकता था न गांव मे जो आधे से ज्यादा खाली हो चुका था, अकेला छोडकर जा सकता था। दो दिन गांव मे फाका किया। तीसरे दिन साहूकार के घर मे सेंध लगाई और उसकी तिजोरी मे से पच्चीस रुपये और उसके गोदाम मे से एक बोरी चावल की चुराई। और सो रधिया चोर और चोर से डाकू बन गया।...

सड़क को ताकते-ताकते शाम से रात हो गई मगर इस रास्ते से एस० टी० की बसों, इक्कों या बैलगाडियों, या इक्का-दुक्का पैदल मुसाफिरों के सिवा कोई न गुजरा। शार्मसिंह ने अपनी बंदूक रधिया को देते हुए कहा, "जरा इसे सम्भाल। मैं पेड पर चढकर देखता हूँ उधर से कोई आ रहा है क्या?" शार्मसिंह बिल्ली की तरह खामोशी से पेड पर चढ गया और रधिया बंदूक को हाथ मे ऐसे पकडे रहा जैसे उसे डर हो कि आप-से-आप न चल जाए।

अभी शार्मसिंह पेड़ पर चढा ही था कि हरनाम ने कहा, "कोई गाड़ी आ रही है।" रधिया को तो न कुछ सुनाई दे रहा था न दिखाई दे रहा था। मगर हरनाम पुराना शिकारी था। उसको न जाने कहाँ से बू आ जाती थी। शार्मसिंह भी पेड से उतर आया और चुपके से उनके कान मे कहा, "उस तरफ से कोई मोटर आ रही है। मैंने अभी रोशनी देखी है।" खामोशी से उन्होंने एक टूटे हुए पेड के तने को जिसको उन्होंने इस मकसद के लिए पहले से चुना हुआ था सडक के बीचोंबीच गिरा दिया। जैसे आप-से-आप गिर गया हो। और फिर सड़क के किनारे मगर पेड़ो से छुपकर एक तरफ रधिया और हरनाम और दूसरी तरफ शार्मसिंह खड़ा हो गया। बंदूक अब तक रधिया ही के हाथों मे थी।

गाड़ी की रोशनियां करीब आई तो मालूम हुआ कि एक जीप है। जीप रुकी और ड्राइवर और दूसरा आदमी उतरकर पेड़ के तने

को हटाने लगे तो रधिया ने देखा जीप में दो लोहे की पेटियाँ रखी हैं। जिन मे ताले और मुहरें लगी है। "जरूर सरकारी खजाना कहीं ले जाया जा रहा है।" उसने सोचा और ऐन उस वक्त तीनों डाकुओं ने निकलकर दोनों सरकारी आदमियों को घेर लिया।

तीनों ने ढाटा बाँधा हुआ था जिसमें से आवाज मुश्किल में निकलती थी फिर भी हरनाम ने डाँटकर कहा, "तुम लोग जान की खैर चाहते हो तो खजाना छोड़ दो और भाग जाओ।"

ड्राइवर हकलाते हुए बोला, "ख···जा···ना ?"

दूसरे आदमी ने कहा, "यह ख···जा···ना—नहीं है। हम तो वे ··ल···ट···बक्स···ले···जा रहे हैं।"

"कोई भी बक्स हो" रधिया ने ढाटे के पीछे मं आवाज दी और दो नाली बन्दूक आगे करके कहा, "हम जानते है कि यह सरकारी खजाना है। नहीं तो ताला क्यों लगा है?"

"इनमे तो वोटिंग पेपर है, भाई।"

"वह हम नहीं जानते।" रधिया ने कहा।

शर्मासिंह इतने में जीप के पास पहुँच गया था। उसने लोहे की पेटियों का मुआइना करके कहा, "जरूर खजाना है। वर्ना यह मुहर क्यों लगी है?"

"अब तुम्हें क्या बताएँ कि वोटिंग पेपर क्या है।" जीप के ड्राइवर ने कहा, "वोटिंग पेपर यानी कागज की पर्चियाँ, जिस पर वोटरों ने अपनी पसन्द के नाम के आगे काँटी बना रखी है।"

"कागज की पर्चियों से दुनिया बदल सकती है।" रधिया के कान में एक आवाज आई।

"किसके नाम के आगे काँटी लगी हुई है?" रधिया ने सवाल किया।

"क्या मालूम किसके नाम के आगे है।" दूसरे आदमी ने जवाब दिया। "वोटिंग तो खुफिया होती है।"

मगर ड्राइवर ने कहा, "हमारे इलाके में तो ज्यादातर वोट डाक्टर बाबू को पड़े हैं।"

"कब इसका फैसला तुम करोगे ?" किसने रधिया से यह कहा था ?

"अरे रधिया, देखता क्या है ?" शार्मसिंह ने कहा, "एक फायर कर न। ये साले अभी भाग जाएँगे।"

"और खज़ाना हमारे कब्जे में होगा।" हरनाम ने जीप की तरफ हरकत करते हुए कहा।

"यह खज़ाना बड़ा अनमोल है।" रधिया ने एक-एक लफ्ज को तौलते हुए कहा।

"हाँ, हाँ। एक हाथ में मैं ताले तोड़ देता हूँ।"

और यह कहकर हरनाम ने एक छलाग लगाई और उसका मजबूत हाथ लोहे की पेटी में लगे हुए ताले पर था।

रधिया ने लबलबी दबाई और हरनाम के हाथ पर गोली लगी तो वह नीचे आ रहा।

"चलो, जल्दी जीप चलाओ," रधिया ने ड्राइवर और उसके साथ के आदमी को कहा। रधिया अभी जीप पर कूदकर बैठने ही वाला था कि शार्मसिंह ने पीछे से आकर उससे बन्दूक छीन ली। मगर रधिया चलती हुई जीप पर सवार हो ही गया।

"नमक हराम ! हमारे साथ गद्दारी करता है !" यह कहकर शार्मसिंह ने दूसरी गोली चला दी।

मगर अब जीप फर्राटे भरती हुई जा रही थी।

"डाक्टर बाबू, अपनी पर्चियाँ सम्भाल लीजिए। आपने कहा था ना कि उनमें दुनिया बदल सकती है ?"

"और यह भी कहा था कि कब का फैसला तुम करोगे ?"

"वह मैंने कर लिया। आप मालती और मेरे बेटे का ख्याल रखिएगा।" उसने यह कहा और वह गिर पड़ा। तब लोगों ने देखा कि गोली उसके सीने में लगी थी। और अब डाक्टर बाबू भी रधिया डाकू सात्विक रधिया किसान को नहीं बचा सकते थे।

पानी की फाँसी

जब बूँदे टूटी और दरिया के किनारे मछलीमारों की बस्ती पानी में डूब गई तो लक्ष्मीदास के बड़े बेटे धर्मदास ने अपने बाप से कहा, "मैं अब यहाँ नहीं रह सकता, मैं जा रहा हूँ।"

लक्ष्मीदास ने कहा, "अरे धर्मू, तू क्यों घबराता है ? पानी यहाँ तक थोड़े ही आएगा ! अपनी हवेली तो मैंने इसीलिए टीले पर बनाई है।"

धर्मदास ने कहा, "बाबा, मैं पानी से नहीं डरता, दुनिया की आवाज से डरता हूँ। आपको नहीं मालूम, लोग क्या कह रहे हैं।"

और फिर जब पानी के रेले में किसानों की खेतियाँ डूब गई और पकी-पकाई फसल तबाह हो गई, तो उसके छोटे बेटे कर्मदास ने कहा, "बाबा, मैं अब यहाँ नहीं रह सकता, मैं जा रहा हूँ।"

लक्ष्मीदास ने कहा, "अरे कर्मू तू डर गया ? पानी यहाँ तक आ भी गया तो घबराने की कोई बात नहीं, अपनी हवेली की बुनियादें बहुत गहरी और पक्की है और इनमे मैंने असली सीमेण्ट डलवाया है!"

"मैं जानता हूँ, बाबा," कर्मदास बोला, "तब ही तो जा रहा हूँ, क्योंकि किसी और जगह आपने असली सीमेण्ट नहीं डलवाया था। आपको शायद अभी तक नहीं मालूम, लोग क्या कह रहे है।"

"लोग तो कहते ही रहते हैं, कर्मू। वे तो हमारी दौलत से जलते हैं। क्या तुमने नहीं सुना, कुत्ते भौंकते रहते है और कारवाँ चलता रहता है ?"

लेकिन यह सब सुनने के लिए कर्मदास वहाँ नही था। वह उस उजडे, लुटे-पिटे कारवाँ के साथ चल रहा था, जो बाढ़ की वजह से बेघर होकर रेल की ऊँची पटरी पर पनाह ढूँढने जा रहा था।

जब बढ़ते हुए पानी मे आधा गाँव डूब गया तो लक्ष्मीदास की लडकी विद्या ने कहा, "बाबा, मैं जा रही हूँ। अब मैं यहाँ नही रह सकती।"

लक्ष्मीदास बोला, "विद्या, तू भी पानी से डर गई? अपनी हवेली की दीवारें मैंने इतनी मजबूत बनाई हैं कि समन्दर भी आ जाए तो कोई खतरा नही है।"

विद्या ने कहा, "बाबा, टूटने वाली दीवारें तो चुल्लू-भर पानी से भी टूट जाती है। क्या आपने नही सुना कि बाढ़ के मारे हुए शरणार्थी हमारी हवेली की पक्की दीवारो के नीचे से क्या कहते हुए गुजर रहे है?"

लक्ष्मीदास ने कहा, "बेटी, लोग तो बकते ही रहते हैं। अगर मैंने इन लोगो की बातों पर ध्यान दिया होता तो आज तुम लोगो के लिए यह हवेली न खडी कर पाता और न तेरे दहेज के लिए पाँच सौ तोला सोना इकट्ठा कर पाता!"

लेकिन विद्या तो कब की जा चुकी थी।

पानी बढ़ता ही चला आ रहा था। तीन चौथाई से ज्यादा गाँव डूब चुका था। लोग सिरो पर गठरियाँ उठाये भाग रहे थे। जो समय पर नही निकल सके थे, वे छप्परो पर बैठे थे या पेडों पर चढने की कोशिश कर रहे थे।

धोबी रामदीन का बच्चा पानी के रेले मे बह गया था और ममता की मारी लाजो धोबन ने अपने लाल को बचाने के लिए बीच भँवर मे छलाँग लगा दी थी। और अब तेजी के साथ पानी गाँवों को मटिया-मेट करता हुआ लक्ष्मीदास की हवेली की तरफ बढ़ रहा था।

लक्ष्मीदास की पत्नी सावित्री ने, जो जन्म से लँगडी थी और बैसाखियों की मदद से चलती थी, कहा, "अब मैं यहाँ नही रह सकती, मैं जा रही हूँ।"

लक्ष्मीदास ने उसे समझाया, "अरी, तू बिलकुल फिकर न कर ! सारा गाँव डुबोकर अगर बाढ हमारे घर तक आ भी गई तो क्या हुआ ? मेरे गोदाम मे दो सौ मन गेहूँ भी पडा है, साठ मन चावल है। मन-मन-भर तो हर किसम की दाल है। दो मन आलू, दो मन अँबिया, बीस घी के कनस्तर···"

"चूल्हे मे जाएँ तुम्हारे घी के कनस्तर ! अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी जानते हो लोग क्या कहते हुए जा रहे है ?"

"क्या कह रहे है ?" लक्ष्मीदास ने पूछा।

"मेरे बच्चो को कोसते हुए जा रहे है। सो, मैं भी उनके साथ ही जाऊँगी। उनकी मिन्नत करूँगी कि जो कोसनें मेरे बच्चों को दिए हैं उन्हें वापस ले लें।"

लक्ष्मीदास क्रोध से चिल्लाया, "अपने बच्चो की तुम्हे इतनी चिंता है और मेरा कोई खयाल नही ? क्या जमाना आया है कि आज पत्नी भी पति को छोड़कर जा रही है।"

"तुमने जिससे विवाह किया था, वह तुम्हारी पत्नी उस तिजोरी मे बन्द है ?" सावित्री चिल्लाई, "अब उसे सँभालो, मैं चली अपने बच्चो के पास।"

और, सो, सावित्री भी चली गयी।

नौकर तो पहले ही भाग गए थे। अब लक्ष्मीदास था और सुनसान हवेली थी। वह इस हवेली मे अकेला था, उस गाँव मे अकेला था, इस दुनिया मे अकेला था और पानी की लहरें अब हवेली की पथरीली दीवार से टकरा रही थी।

"कोई है ?" लक्ष्मीदास चिल्लाया कि शायद कोई नौकर बचा रह गया हो, शायद कोई बच्चा वापस आ गया हो, "कोई है ?"

उसकी आवाज दीवारों से टकराती, खाली हवेली के कमरो और बरामदो मे गूँजती हुई फिर उसके पास लौट आई और जवाब मे कोई न आया। केवल पानी की लहरें दीवार से टकराती रही, ऊपर उठती रही।

···जानते हो, लोग क्या कहते हुए जा रहे हैं ? सावित्री की

आवाज़ उसके दिमाग में गूँजी।

और फिर उसके अपने विचारों की आवाज़ें उसके दिमाग की दीवारों से टकराती रहीं—

···लोग क्या कहेंगे ?···

···लोग तो कहते ही रहते हैं !···

···जिन्दगी-भर मैं लोगों की बातें सुनता रहा हूँ···

···अब मैं नहीं सुनूंगा, नहीं सुनूंगा ! क्यों सुनूं ?···

···क्या लोगों ने मेरी बात सुनी थी ?···

···जब मैं आठ वर्ष का था तो स्कूल से निकाल दिया गया था, क्योंकि मेरे बीमार बाप के पास फीस देने को रुपये नहीं थे, क्या स्कूल के मैनेजर ने मेरी बात सुनी थी ?···

···और जब बाप के मरने के बाद मैं बाजार में पकौड़े बेचा करता था और बिना लाइसेन्स के खोंचा लगाने के जुर्म में मेरा चालान हो गया था तो क्या थानेदार और मजिस्ट्रेट ने मेरी बात सुनी थी ? मैं गिड़गिड़ाता ही रहा कि पहली बार भूल हुई है, सरकार, फिर कभी ऐसा नहीं होगा ! मगर उन्होंने मेरी एक न सुनी और पच्चीस रुपये जुर्माना कर दिया था, जो मैंने घर में जो कुछ था बेचकर दिया था !···

···और जब वह सत्रह बरस का था और फेरी लगाकर कपड़ा बेचता था और एक दिन महाजन रामलाल की बेटी कमला ने शलवार और कमीज के सूट के लिए उससे छः गज फूलों वाली सिल्क खरीदी थी···पैंतीस वर्ष के बाद भी उसकी याद में उस सिल्क पर छपे हुए फूल खिले हुए थे···कमला की याद भी तो इन फूलों की तरह थी, रंगीन मगर सुगन्ध नहीं। और फिर वह बार-बार इसी घर पर कपड़ा बेचने के बहाने जाने लगा था और उसको और कमला को एक-दूसरे से प्यार हो गया था। मगर जब कमला के बाप को मालूम हुआ कि बेटी एक फेरी वाले से हँसकर बात करती है तो उसने अपनी बेटी को तो घर में बन्द कर दिया था और लक्ष्मीदास को अपने नौकरों से इतना पिटवाया कि वह अधमरा हो गया था।

उन जूतों की मार की चोट वह आज भी अपने बदन पर महसूस कर सकता था। उसने महाजन को कितना समझाया था कि मैं आप ही की जात-बिरादरी का हूँ, आपकी बेटी से सच्चा प्रेम करता हूं, उससे ब्याह करना चाहता हूँ, मगर महाजन ने उसकी एक न सुनी थी, क्योंकि महाजन महाजन था, लखपति था और लक्ष्मीदास फेरी वाला छोकरा था।

...उस दिन मैंने कसम खायी थी कि जैसे भी होगा मैं भी लखपति बनूंगा, सेठ कहलाऊँगा। फिर चाहे उसके लिए मुझे कुछ भी करना पड़े। फिर मुझे कोई जूते नहीं मार सकेगा।

...सो, उसने दो कम्बल बुनने वालों को कम्बल बुनने के करघे लगवा दिए और उन्हें ऊन अपने पास से देकर कम्बल बनवाने का धन्धा शुरू किया। कम्बल तो और आढती भी बनवाते थे मगर लक्ष्मीदास के कम्बल औरों से ज्यादा खूबसूरत और मुलायम होते थे। उसकी वजह यह थी कि उनमें सूत की मिलावट होती थी।...

...फिर जंग आयी। लक्ष्मीदास ने फौजी कम्बल सप्लाई करने के लिए टेंडर भर दिया। लेकिन ठेका मिलने के लिए रिश्वत देना जरूरी था और फिर इतने बड़े पैमाने पर काम करने के लिए भी बहुत रुपये की जरूरत थी। लक्ष्मीदास ने सोचा कि किसी को साझी बना ले। लेकिन फिर उसे मालूम हुआ कि कम्बलों के आढती मूलचन्द, जिसके हाथ वह कम्बल बेचा करता था, की एक लँगड़ी बेटी है, जिसका ब्याह कहीं नहीं हो रहा है और आढती को इसकी बड़ी चिन्ता है। सो उसने एक नाई को बीच में डालकर मूलचन्दजी की लँगड़ी बेटी से ब्याह कर लिया, इस शर्त पर कि दहेज में लड़की पचास हजार रुपये नकद लायेगी।...

...और इस तरह सावित्री उसके घर में लक्ष्मी बनके आ गई। फिर फौज का ठेका उसे मिल गया था। लाखों कम्बल फौजियों के लिए सप्लाई कर दिये गये थे और क्योंकि उनमें सूत की मिलावट ज्यादा थी और ऊन कम, इसलिए यूरोप के बर्फीले मौसम में कितने ही सिपाही ठण्ड और निमोनिया से मर गए थे, लेकिन लक्ष्मीदास को बीस लाख

का मुनाफा हुआ था और उसकी हवेली खड़ी हो गई थी।···

···फिर जंग खत्म हो गई थी और लक्ष्मीदास ने असली घी का व्यापार शुरू किया था, जिसमे मूंगफली का तेल ज्यादा और घी कम होता था। और जब आज़ादी आई तो उसने नकली खद्दर के लाखो झण्डों की बिक्री की, जिनका रंग इतना कच्चा होता था कि एक बारिश में ही हर झण्डे पर बने तीन रंगो का एक मिला-जुला रंग नजर आने लगा।···

···और जब पंचवर्षीय योजना के अनुसार बांध और नहर और कारखाने बनने शुरू हुए तो लक्ष्मीदास ने राष्ट्रीय सेवा के लिए सीमेंट का कारोबार शुरू कर दिया। कई छोटे-मोटे बांध बनाने के ठेके उसे मिल गए। और क्योंकि उसके सीमेण्ट में रेत ज्यादा और सीमेण्ट कम होता था, इसलिए इस धन्धे मे भी उसे लाखों का लाभ हुआ।···

इसी ठेकेदारी में उसने अपने गांव के पास दरिया पर बांध भी बनवाया था और आज वही बांध टूट गया था और अब बाढ़ का पानी खुद उसकी हवेली के चारों तरफ ठाठें मार रहा था।···

मगर उसने चारो तरफ देखकर सोचा, मेरी हवेली इतनी ऊँची है, इसकी दीवारें इतनी मजबूत हैं कि बाढ मेरा कुछ नही बिगाड सकती। मगर हवेली सुनसान थी, जीवन मे पहली बार वह अकेला था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि चारो तरफ एकाकीपन की गहरी धुंध छायी हुई थी और उसका सांस लेना मुश्किल हो रहा था।

अंधेरा भी बढता जा रहा था। उसने सोचा रोशनी करनी चाहिए। मगर बाढ की वजह से बिजली के खम्भे गिर चुके थे। तार टूट चुके थे। उसने सोचा, लैम्प जला लेना चाहिए, मगर तेल का लैम्प या लालटेन तो घर में था ही नही। तब उसे उन पीतल के दीयों का ध्यान आया, जो मूर्ति के सामने रखे जाते थे। वही माचिस भी जरूर होगी।

माचिस की डिबिया मिली, मगर उसमें केवल एक ही तीली थी। बडी एहतियात से उसने दियासलाई जलाई ही थी कि माचिस की नन्ही-सी रोशनी मे उसने देखा कि देवी की मूर्ति उसे क्रोध मे घूर रही है।

उसने सोचा, आज देवी के मन्दिर मे अँधेरा है न, इसी लिए देवी रूठी हुई है। मगर अभी दीये की बत्ती के पास वह जलती हुई माचिस को बढा ही रहा था कि खुली हुई खिडकी मे दरिया की तरफ से आई हुई ठण्डी हवा का एक झोंका आया और उस नन्ही-सी रोशनी को बुझा गया।

अब अँधेरा था, सन्नाटा था, सरसराती हुई ठण्डी हवा थी और सितारो की रोशनी मे झिलमिलाता हुआ देवी का चेहरा था, जिस पर लक्ष्मीदास को अब भी क्रोध ही नज़र आ रहा था।

वह हाथ जोडकर गिडगिडाता हुआ बोला, "देवी, क्षमा करो! आज तुम्हारे मन्दिर मे अँधेरा है, इसमे मेरा दोष नही, माता! वह *अभागिन लँगडी सावित्री चली गई है न!"*

न जाने वह हवा की सरसराहट थी, या दूर से आती हुई शरणार्थियो के बच्चों की रोने की आवाज थी, या खुद उसके अपने दिल की धडकनो की गूँज थी, लेकिन लक्ष्मीदास को ऐसा लगा, जैसे देवी उससे कह रही हो—

सावित्री तो चली गई और अब लक्ष्मी भी चली जाएगी। फिर इस सुनसान हवेली मे तेरे सिवा कोई नही रहेगा!

"नही, माता!" वह गिडगिड़ाया, "कम-से-कम तुम मुझे छोड़कर न जाना! इस जीवन मे मेरा कोई और सहारा नही है! मैं तो तुम्हारा दास हूँ, लक्ष्मी माई! जीवन-भर तुम्हारी ही पूजा की है!"

"तू झूठ बोलता है!" देवी ने कहा, "तूने मेरी पूजा नही की, तूने सोने-चाँदी की पूजा की है! तूने रुपये-पैसे के सामने माथा टेका है!"

"सोना-चाँदी, रुपया-पैसा, यह सारी दौलत, देवी, तुम्हारा ही तो रूप है! तब ही तो मैंने इन सबको पूजा है!"

"मैं दौलत की देवी जरूर हूँ, लक्ष्मीदास", देवी की मूर्ति के बिना खुले होंठों से आवाज़ आई, "मगर वह दौलत सोने-चाँदी की ईंटों की शक्ल मे तिजोरियो मे नही रहती, वह दौलत तो गेहूँ की सुनहरी बालों की शक्ल मे खेतो मे लहलहाती है! और आज इस दौलत को तूने मटियामेट कर दिया है! आज किस मुँह से तू अपने-आपको

लक्ष्मी का पुजारी कह सकता है ?"

अब लक्ष्मीदास को ऐसा लगा, जैसे या तो वह पागल हो गया हो, या उसकी सुनसान अँधेरी हवेली मे भूतों का बसेरा हो। हर तरफ से उसे अजीब-अजीब आवाजें सुनाई दे रही थी, जैसे सरदी से काँपते हुए किसी फौजी के दांत कटकटा रहे हो, जैसे लाजो धोवन का बच्चा रो रहा हो···जैसे सावित्री की बैसाखियाँ संगमरमर के फर्श पर खट-खट करती निकट आ रही हो···

और अँधेरे मे अजीब-अजीब चेहरे झलमला रहे थे—कमला का नाजुक-सा, पीला-सा चेहरा, जिसमे उसकी बड़ी-बड़ी आँखें उसे लक्ष्मी की मूर्ति की आँखों की तरह क्रोध मे देख रही थी···उस अफसर की लालच-भरी आँखें जिसे रिश्वत देकर उसने कम्बलों का ठेका लिया था···और उसके अपने बेटे धर्मदास का चेहरा, जो अपने बाप को ऐसी दुख-भरी आँखो से देख रहा था, जैसे उसका क्रिया-करम करने आया है।···

और अब उसने देखा कि पानी बढते-बढते हवेली की पहली मंजिल तक आ पहुँचा है। गोदामों मे भरी हुई अनाज की बोरियाँ तो पहले ही डूब चुकी थी। अब उसने देखा कि गोल कमरे का फर्नीचर पानी मे तैर रहा है। कोने में रखी लोहे की तिजोरी (जिसमे ब्लैक का लाखों रुपया बन्द था) डूब चुकी है।

वह जीने पर से ऊपर की मंजिल की तरफ भागा। मगर एक बिफरी हुई नागिन की तरह पानी उसका पीछा कर रहा था। और अब उसमे उसके बे-मत्र बही-खाते डूब रहे थे, जिनमें वह इनकम-टैक्स से बचने के लिए नकली हिसाब-किताब लिखता था और उन तमाम हुंडियो और रसीदो के बंडल और पुलन्दे डूब रहे थे, जो उसने गरीब और अनपढ़ किसानों से और छोटे-मोटे दुकानदारों से दस्तखत करवाकर या अँगूठे लगवाकर रख छोडे थे।···

अब केवल छत रह गई थी, जहाँ वह सोता था। वहाँ उसकी मसहरी लगी थी। सीढ़ियों पर चढ़ता, हाँफता-हाँफता वह वहाँ पहुँचा और पलंग के नरम गद्दो पर गिर पड़ा। भय के मारे उसने आँखें बन्द

कर लो।

नहीं, उसने सोचा, यह कभी नहीं हो सकता ! पानी इतना ऊंचा कभी उठ ही नहीं सकता कि टीले पर बनी हुई हवेली की तीसरी मंजिल पर भी आ जाए। अब मैं बिलकुल महफूज हूँ, मेरा बाल भी बांका नहीं हो सकता !

लेकिन अभी वह यह सोच ही रहा था कि उसे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे कितने ही नरम-नरम हाथो ने उसकी मसहरी को उठा लिया हो और उसे धीरे-धीरे झुला रहे हो, जैसे बच्चे को सुलाने के लिए उसका पालना हिलाते हैं।...शायद मुझे नींद आ रही है, उसने सोचा, तब ही ऐसा महसूस हो रहा है। लेकिन अब उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे एक नरम, ठण्डी रस्सी उसकी गर्दन को छू रही है। घबराकर उसने आँखें खोलीं तो देखा, पानी अब मसहरी से भी ऊँचा हो चुका है और किसी पल मे भी वह डूबने वाला ही है और दूर से, बहुत दूर से, जैसे दूसरी दुनिया से, कमला उसे आवाज दे रही है, लक्ष्मीदास ! लक्ष्मीदास ! ...

तीन दिन बाद जब बाढ़ का पानी उतरा और गांव वाले वापस आये तो उन्होंने देखा कि पानी का जोर लक्ष्मीदास की हवेली की दीवार तक पहुंचकर टूट चुका था। सारे गांव मे वही एक मकान खड़ा रह गया था। उसकी दीवारें इतनी मजबूत साबित हुई थी कि अन्दर एक बूंद पानी भी न पहुंच पाया था। हर चीज अपनी हालत मे सूखी पड़ी थी, मगर तीसरी मंजिल की छत पर एक मसहरी पर लक्ष्मीदास लेटा था। डॉक्टरो ने परीक्षा के बाद ऐलान किया कि मरने वाला भय और हृदय की गति के रुक जाने के कारण तीन दिन पहले ही मर चुका था।

दारोगा और लड़की

लड़की जवान थी, खूबसूरत थी, बाँकी थी, लेकिन परेशान और परेशान हाल थी। आधी रात के वक्त वह पुलिसवालो को सरहद के करीब आवारा घूमती हुई मिली थी। उनको शुवहा था कि वह बदचलन है, या मुमकिन है पाकिस्तानी जासूस हो। इसलिये वह उसे पकड़कर थाने मे ले आये।

दारोगा साहब मुजरिमो से इकवाले जुर्म कराने में मशहूर थे। बड़े-बड़े खूनी और डाकू उनसे पनाह मॉंगते थे। लड़की को उनके सामने लाकर खड़ा किया गया तो पहले तो उन्होने उसे सर से पाँव तक देखा, फिर दिल मे सोचा, 'छोकरी बुरी नही।' खिजाब से काली की हुई मूँछो पर ताव देकर मुस्कराते हुए बोले—"बैठ जाओ।"

लड़की कुर्सी पर बैठ गई। इस कुर्सी पर उससे पहले बड़े नामी-गिरामी चोर, डाकू, खूनी, लुटेरे बैठे थे। दारोगा साहब ने उसके खूबसूरत चेहरे को घूरते हुए सोचा, ऐसी हसीन मुजरिम तो थाने मे आज तक कभी पेश नही हुई। इससे सवाल-जवाब किये जायें तो कैसे? अपने कास्टेबलो से कहा—"तुम बाहर जाओ।"

एक हवलदार बोला—"साहब, कहिये तो इसकी जामा तलाशी ले ली जाये। शायद कोई हथियार छिपा रखा हो—कहीं!" और 'कहीं' का शब्द उसने एक ऐसे खास अंदाज से आँखें मीचकर और होंठ काटकर कहा कि लड़की शरमा गई और उसने अपना सीना ओढनी के पल्लू से ढाँप लिया।

"नही, नही, रहने दो।" दारोगा साहब ने जल्दी से कहा। हवल-

दार और सिपाही कनखियो से दारोगा साहब को देखते हुए बाहर निकल आये।

अब दारोगा साहब ने इत्मीनान से लड़की को गौर से देखा। चूड़ीदार पाजामे और चुस्त कमीज मे उसका बदन कसा-कसा था। ओढनी का आँचल जो उसने शरम से सर पर ले लिया था उसमे से झलकता हुआ गोरा-गोरा चेहरा भी जवान था। मगर न जाने क्यो उसकी आँखें ऐसी लगती थी जैसे उन्होंने मुद्दतो का दुख और दर्द अपनी पलकों मे समेट रखा हो।

दारोगा साहब ने सोचा—"शक्ल से तो बड़ी भोली-भाली लगती है।" मगर उनके तजुर्बेकार दुनिया देखे हुए दिमाग ने उन्हे याद दिलाया, "भोली-भाली शक्ल वाले होते है जासूस भी।" सो उन्होंने खँखारकर अपने चेहरे पर अफसराना शान पैदा करते हुए कड़क आवाज मे सवाल-जवाब करने शुरू किये—

"नाम ?"

लड़की यह नाम सुनकर चौंक-सी गई। जैसे किसी ने उससे कोई बहुत बड़ा भेद खोलने के लिये कहा हो। फिर उसने आँखें झुका ली जैसे जुर्म इकबाल करने से घबरा रही हो।

दारोगा साहब ने मुजरिमो का रजिस्टर खोला, फिर कलम को दवात मे डुबोकर अपने सवाल को दोहराया—

"तुम्हारा नाम ?"

अब लड़की ने धीरे-धीरे अपनी बूढी नजरें उठाईं, जिनमे मुद्दतो के दुख-दर्द के साथ एक नये जख्म का आभास भी था। कुछ देर तक तो वह दारोगा को देखती रही, फिर उसके जवान होंठों पर एक हल्की-सी मुस्कराहट उभर आई। और वह बोली—"मुझसे मेरा नाम न पूछो।"

दारोगा साहब को इस जवाब की उम्मीद न थी। उन्होने किसी कद्र ताज्जुब से पूछा—"क्यो ? क्यो न पूछूं ?"

लड़की ने दारोगा की आँखो मे आँखें डालकर जवाब दिया—

जब भी आता है मेरा नाम तेरे नाम के साथ,
जाने क्यों लोग मेरे नाम से जल जाते हैं।

यह जवाब सुनकर दारोगा साहब बिल्कुल मुग्ध हो गये। उन्हें इसकी कतई उम्मीद न थी कि लड़की इतनी जल्दी इतनी बेतकल्लुफ हो जायेगी, चुनांचे उन्होंने भी अपने चेहरे पर एक शरारती मुस्कराहट बिखेरते हुए कहा—"अजी नहीं, हम तो नाम पूछकर रहेंगे।"

लड़की ने शरम से गरदन झुकाकर जवाब दिया—

शरम से नाम तक नहीं लेते
अब हमारा खिताब है कोई ?

अब तो दारोगा साहब और भी बेबाक हो गये। लड़की की ठोडी से हाथ लगाकर उसका चेहरा ऊपर उठाते हुए बोले—"नाम तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा।"

लड़की की बुझी हुई आंखों में बिजलियाँ-सी चमक उठीं, जैसे राख को कुरेदने से उसकी तह में से चिनगारियाँ झांकने लगीं। दारोगा साहब का हाथ झटककर उसने गुस्से से जवाब दिया।

हमारा नाम अगर यह नहीं तो वह होगा
हमारे नाम में क्या काम, मुद्दआ कहिये।

दारोगा साहब का बढ़ता जोश ठंडा पड़ गया। वह सम्हलकर कुर्सी पर बैठ गये। कई बार खंखारकर खिसियाहट दूर करने की कोशिश करके उन्होंने कलम को स्याही में डुबो दिया और रजिस्टर में लिखा—

"नाम—गुमनाम।" फिर उन्होंने रूखेपन से अफसरशाही अंदाज में पूछा—"बाप का नाम।"

"मालूम नहीं, कोई कहता है बादशाह की औलाद हूँ, कोई कहता है सूफी संत की। कोई कहता है किसी फौजी सिपाही की।"

"तुम्हारी मां क्या कहती है ?" दारोगा साहब ने 'मां' शब्द पर जोर देते हुए पूछा।

"मेरी मां कहती है कि मैं मुहब्बत के रिश्ते से पैदा हुई हूँ। उसने इतनों से मुहब्बत की है और इतनों ने उससे मुहब्बत की है कि बाप

का नाम बताना मुश्किल है।"

दारोगा को ताज्जुब था कि वह इतनी बेहयाई की बातें कर रही है और उसकी पलक तक नहीं झपकी। बराबर आँखों में आँखें डालकर जवाब दिये जा रही है। उन्होंने रजिस्टर में लिख दिया—"बाप का नाम नहीं बताती।" जरूर हराम की औलाद है। फिर उन्होंने पूछा—

"माँ का नाम?"

लड़की ने जवाब दिया—"ब्रज बाई।"

यह नाम रजिस्टर में दर्ज करके दारोगा ने उसके आगे लिख दिया—"कोई तवायफ होगी।" उनका अगला सवाल था—"कहाँ की रहने वाली हो?"

लड़की ने आँखों से आग बरसाते हुए जवाब दिया—"आप ही बताइये ना मैं कहाँ की रहने वाली हूँ? अगर मैं तो कहीं-न-कहीं की रहने वाली तो होऊँगी।"

दारोगा साहब को अब लड़की से बातें करने में फिर लुत्फ आने लगा था। उन्होंने सोचा—कम्बख्त है बदतमीज, मगर क्या अन्दाज माशूकाना है। बोले—"मुझे तो तुम दिल्ली की रहने वाली मालूम देती हो।"

"दिल्ली में मेरे चाहने वालों की कमी नहीं। अब भी वहाँ चली जाऊँ तो हजारों की भीड़ लग जाती है। लेकिन मुझे वहाँ से निकाला मिल चुका है। मैंने लाख कहा कि मैं जिसकी सिफारशी चिट्ठी कहो ला सकती हूँ। डाक्टर ताराचंद से मेरा पुराना रिश्ता था। शंकर साहब मुझे अपने यहाँ रखने को तैयार थे। गोपीनाथ अमन के यहाँ मैं रह सकती थी। जगन्नाथ आजाद और प्रकाश पंडित मुझे अपने पास रखने को तैयार थे। लेकिन दिल्ली के दारोगा ने जो बिल्कुल आप जैसा था मेरी एक न सुनी और मुझे निकालकर ही दम लिया। दिल्ली में अब मेरा कहाँ ठिकाना?"

दारोगा ने यह सब अप्रसिद्ध नाम मुश्तबा लोगों की फहरिस्त में लिख लिये, फिर बोले—"जरूर तुमने कोई हरकत ही ऐसी की होगी। फिर तुम यू० पी० क्यों नहीं चली गईं?"

"जाती क्या, मेरा घर यू० पी० मे भी था। इलाहाबाद और लखनऊ पर तो मेरा खास हक था। सर तेज बहादुर सप्रू और पंडित मोतीलाल नेहरू की गोद मे खेली हुई हूँ। जवाहरलाल नेहरू मेरे बचपन के दोस्त थे। प्रेमचंद तो बडे सदाचारी थे। बडा भोला-सा और खामोश-सा प्रेम था उनको मुझसे। आनद नारायण मुल्ला से मेरे पुराने ताल्लुकात है। रामलाल मेरे बडे चहेते हैं और फिराक साहब को तो मुझसे ऐसा लगाव था कि वह अपनी बीवी को तलाक देकर मुझे घर मे रखने को तैयार थे। मगर वहां के दारोगा ने आवारागर्दी और बदचलनी के इल्जाम में मेरा चालान कर दिया और उत्तर प्रदेश से निकल जाने को कहा, लेकिन मुझे एक खुशी है, मुझे घर से निकालकर जिसको घर-गृहस्थी सौंपी गई वह मेरी मांजाई बहन है। जिसमे मैं अब भी प्यार करती हूँ। चाहे वह मुझे सौतन समझकर पहचानने से भी इंकार कर दे।"

दारोगा ने कहा—"बिहार तो यू० पी० के पडोस ही मे है वहीं घर बना लेती?"

"गई, बिहार भी गई।" लड़की ने जवाब दिया। उसके अदाज मे बडी कड़आहट थी। "वहाँ भी मेरे चाहने वालों की कमी नहीं थी। एक पंचमेल कपड़ों वाले ने तो मुझे बुलाया भी। कहने लगा, तुमको घर-मकान, इज्जत सब दूंगा। पहली बीवी नहीं तो दूसरी बीवी बनाकर रखूंगा। निकाहनामे पर दस्तखत होंगे उस वक्त के काजी के जिसे पाँच पार्टियों ने मुकर्रर किया है। अपना तैंतीस नुक्तेवाला सयुक्त प्रोग्राम चलाने के लिये। मगर भला हो एक महाशय का उनको ऐन वक्त पर हिंदू कोड बिल याद आया और उन्होने ऐलान किया कि हिन्दू सिर्फ एक शादी कर सकता है। दूसरी शादी गैर-कानूनी होगी। सो महाशयजी की मेहरबानी से मैं बिहार से भी निकाली जा रही हूँ। अगर आखिरी वक्त मे लाल कपडे वाले ने मुझे बचाया नही।"

"आंध्र क्यों नही गई?" दारोगा दे व्यंग्य करते हुए कहा—"हैदराबाद का कोई नवाब घर मे डाल लेता।"

लड़की ने एक गहरी ठंडी सांस लेकर जवाब दिया—"एक जमाना

था हैदराबाद में भी मेरा घर बजारा हिल पर था। निज़ाम हैदराबाद और उनके वज़ीरे आज़म महाराजा किशन प्रसाद दोनों की नज़रें इनायत मुझ पर थीं। मैं सचमुच राज करती थी। मगर वहाँ खुद मुझसे भूल हुई, सपनों और रईसों के महलों के ऐशो-इशरत में पड़कर मैं जनता की जिन्दगी और उनकी मांगों से बेखबर और बेताल्लुक रही। सो जब निज़ाम की निज़ामत और जागीरदारों की जागीरदारी खत्म हुई तो साथ ही मुझे भी बेगम के पद से हटाकर मामूली लौंडी का पद दे दिया गया। शायद मेरे घमंड की यही सजा थी।'

"तो फिर पंजाब चली जातीं।" दारोगा ने आँख मारके कहा—"वहाँ के जीयाले जवानों में तो तुम्हारी जैसी बाँक वाली लड़की की बड़ी माँग होती।"

"मैं भी यही समझती थी।" लड़की ने कहा और उसके चेहरे पर खुशगवार यादों की मुस्कान खिल उठी। जैसे कोई कुमारी अपनी जिन्दगी के पहले चुम्बन को याद कर रही हो। फिर बोली—"पंजाब वाले हैं भी बड़े मेहमान की इज्जत-खातिर करने वाले। मेरी बड़ी खातिरें हुईं। साहित्यकार, शायर, प्रोफेसर, एडीटर जिसको देखो मेरा ही दीवाना था। मगर यहाँ भी वही हुआ। दो नई चहेतियाँ पैदा हो गईं। मैं तो उन दो सौतनों के साथ भी बहनापा कायम करके इज्जत और आराम से रह सकती थी। मगर मेरे पंजाबी प्रेमी ने मुझसे कहा—'तुम गजब की हसीन हो। तुम जानती हो कि मैं अब भी तुम्हें ही चाहता हूँ। यकीन न हो तो देख लो। मेरी मुहब्बत के ऐलान अखबारों में छपे हुए हैं। दीवारों पर इश्तहारों की सूरत में लगे हैं। लेकिन क्या करूँ, माँ-बाप का हुक्म मानना भी जरूरी है। जात-बिरादरी से डर लगता है। कल बहनों की शादी भी करनी है। इसलिये मैं तुम्हें बाकायदा ब्याह करके कानूनी बीवी बना नहीं सकता। मगर वैसे मुहब्बत मैं तुमसे करता रहूँगा, सो मुझे पंजाब भी छोड़ना पड़ा और मेरे साथ कई पंजाबी प्रेमियों ने भी अपना वतन छोड़ दिया। कहने लगे—'जहाँ कहीं भी तुम जाओगी हम वहीं चलेंगे। हमारा तुम्हारा जिन्दगी-भर का नाता है।' सो, मैं उनके साथ बम्बई चली आई। यहाँ

की फिल्मी दुनिया मे मुझे हाथों-हाथ लिया गया। मारवाड़ी सेठ, गुजराती व्यापारी, पारसी विजनेसमैन, सिंधी फाइनेन्सर, पंजाबी और बंगाली और मराठे डायरेक्टर सब मुझ पर आशिक हो गये। साहिर, कृष्ण चंदर, राजेन्द्रसिंह बेदी, मजरूह, राजेन्द्र कृष्ण, आगा जानी काश्मीरी और इन्दरराज आनन्द ने मुझे फिल्मी सवाद वोलने सिखाये। फिल्मी गीत मुझसे गवाये और फिर मेरा बनाव-सिंगार करके मुझे फिल्म की हीरोइन बना दिया। मेरी शोहरत हिन्दुस्तान के कोने-कोने मे हो गई। मद्रास, त्रिवेन्द्रम, कलकत्ता और विजयवाड़ा मे चश्मे बद्दूर मेरे हुस्न के चर्चे होने लगे और लोग मेरे नाम की कसमे खाने लगे। रुपये की रेल-पेल हो गई। वहाँ मैं खुशहाल जरूर थी मगर खुश नही थी। हजारो लाखो की दिलदारी से मेरी क्या तसल्ली होती? मुझे तो घर बसाने की आरजू थी। दारोगा साहब! मुझे रुपया नही चाहिये, नाम नही चाहिये, शोहरत नही चाहिये। मुझे इज्जत की जिन्दगी चाहिये। मुझे दर-दर की ठोकर खाना मजूर नही है\u2026" जब्त करने पर भी लड़की रो पड़ी।

दारोगा ने टेलीफोन उठाकर एक नंबर मिलाया और बड़े अदब-कायदे मे अपने वड़े अफसर से बात करने लगे। "यस सर, नो सर, मुश्तबा हालतो में एक लडकी पकडी है। जी हाँ, उसे बार्डर के पास में ही पकडा है। यस सर, यही शुबहा मुझे है—नाम तो बडे-बडे लोगो के लेती है—जैसा अक्सर लोग करते है। यस सर।" उन्होने टेलीफोन का चोगा उठाकर रख दिया।

कुछ सोचकर दारोगा ने अपना कलम वापिस रख दिया। रजिस्टर बंद कर दिया। अपनी पेटी कसते हुए खडे हो गये और कहा—"अब सब मामला साफ हो गया।"

लडकी आँसू पीकर बोली—"तो अब मैं जा सकती हूँ?"

"हाँ," दारोगा ने कहा—"तुम जा सकती हो।"

दारोगा के बोलने के अदाज मे एक संदिग्ध व्यंग था, जिसमे घबराकर लडकी ने पूछा—"मगर कहाँ? मैंने बताया या ना कि मैं अपने वतन में शरणार्थी हूँ। मेरा घर हर जगह है और कही भी नही है।

जाऊँ तो कहाँ जाऊं ?"

दारोगा ने दाँत पीसकर कहा—"जहाँ से आई हो।"

"जहाँ से आई हूँ ?" लड़की ने भोलेपन से दोहराया। "दखन वाले कहते है मेरा जन्म दखन मे हुआ था, मगर···"

"दखन मे नही तुम उत्तर मे जाओगी।"

"उत्तर मे ?"

'हाँ और क्या ? पाकिस्तान उत्तर ही मे तो है ?"

"पाकिस्तान ? पाकिस्तान से मेरा क्या ताल्लुक है ?"

"बहुत गहरा—और बहुत सीधा-सादा—तुम पाकिस्तानी जासूस, हो !"

'मैं और पाकिस्तान ? मैं और पाकिस्तानी जासूस ?" लड़की की हैरत गुस्से मे बदलती गई।

"नही, मैं हिन्दुस्तानी हूँ। समझे तुम ? हिन्दुस्तानी ! तुम मेरा हक मुझसे छीन सकते हो, मुझे बेघर बना सकते हो, मगर तुम मुझे गद्दार की गाली नही दे सकते।"

"सिपाहियो!" दारोगा की आवाज गूँजी—"इस लड़की को उठाकर ले जाओ और सरहद पर जाकर उसे पाकिस्तानी सिपाहियों के हवाले कर दो। कहना, तुम्हारा माल तुम्हे लौटा रहे है। इसे हिफाजत से सम्भालकर रखें। अब के इधर आई तो इसकी जबान काट ली जायेगी।"

सिपाही अपने दाँत निपोरते हुए उसकी तरफ बढ रहे थे और लड़की पीछे दीवार की तरफ हट रही थी।

"नही, नही, मैं जासूस नही हूँ।" उसकी आँखो मे दहशत बढ़ती जा रही थी, जैसे हिरन को शिकारी कुत्तों ने घेर लिया हो। वह जानती थी कि उसकी मौत करीब आ पहुँची है, मगर फिर भी वह बोले जा रही थी। "मैं जासूस नही हूँ। मैं हिन्दुस्तानी कौमपरस्त हूँ। सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तान हमारा, मैंने ही लिखा था। यकीन नहीं आता तो मेरे कैरेक्टर सर्टीफिकेट पढ लो। देखो यह महात्मा गाधी के हाथ का लिखा हुआ है, इस पर पडित जवाहरलाल के दस्त-

खत है। यह शास्त्रीजी की चिट्ठी है।' उसके कुर्ते के भीतर से चिट्ठियों का एक पुलिंदा निकल आया था। "यह देखो, शहीद भगतसिंह का खत। इंकलाब मेरी गोदी में खेला है। रामप्रसाद बिस्मिल ने फांसी के तख्ते पर मेरा ही तराना गया था…"

वह आगे कुछ न कह सकी। क्योंकि एक सिपाही के हाथ ने उसका मुंह बंद कर दिया था। चारो सिपाहियो ने उसके हाथ-पांव पकडे और उसे उठाकर बाहर ले गये।

दारोगा ने अपनी खिजाब से काली मूंछो को ताव देते हुए कहा—"आवारा छिनाल कही की। हमारे नेताओं और शहीदो को बदनाम करती है?"

सरहद के इधर दो हिन्दुस्तानी फौजी खड़े पहरा दे रहे थे और उधर दो पाकिस्तानी फौजी।

दारोगा के सिपाही लड़की के हाथ-पांव बांधकर और मुंह बंद करके लाये थे। ऐन बार्डर के किनारे लड़की को खड़ा करके उन्होंने पाकिस्तानियों से कहा—"लो यह अपना माल! तुम्हारा जासूस तुम्हें लौटा रहे हैं।"

पाकिस्तानी फौजियों ने लड़की की तरफ देखा मगर उनके चेहरे पर पहचान के कोई आसार नमूदार नहीं हुए। लड़की ने भी देख लिया कि उन दोनो में से एक भी उसका प्रेमी नही है। एक सिंधी था, एक बलूची।

और उसी तरफ हिन्दुस्तानी बारेक की तरफ से एक रेडियो का प्रोग्राम सुनाई दिया। लड़की ने कहा—"सुनो यह मेरी आवाज है।"

रेडियो पर साहिर का गीत बज रहा था—"सुबह कभी तो आयेगी…"

और उस लम्हे में लड़की को एक हिन्दुस्तानी फौजी ने पहिचान लिया। मगर वह ड्यूटी पर था। बोल नही सकता था। आंखों-ही-आंखों में उसने लडकी से अपनी हमदर्दी और मजबूरी जाहिर की।

लड़की ने फौजी की तरफ देखकर नजरों में कहा—"जवान! तुम ही मुझे बचा सकते हो, वरना यह लोग मुझे हिन्दुस्तान से निकाल

देंगे।"

जवान ड्यूटी पर था, बोल नहीं सकता था, एक राजनीतिक कैदी से हमदर्दी जाहिर भी नहीं कर सकता था। बगैर हुक्म के अपनी जगह से हिल भी नहीं सकता था। मगर उसकी आँखें बे-इख्तियार उस बिजली की स्विच पर गईं जो उसी के बराबर ही में लगा हुआ था।

दारोगा के सिपाहियों ने आखिरी बार कहा—"पाकिस्तानियो! लेते हो अपने जासूस को कि उसे धक्के मारकर तुम्हारी सरहद में फेंक दें।"

अभी वह लड़की को धक्का देने नहीं पाये थे कि एकदम अंधेरा हो गया। दारोगा के सिपाहियों ने अंधेरे में टटोला तो लड़की गायब थी। मगर कहीं पास ही से लड़की की आवाज आ रही थी—"तुमने मुझे वतन ही में शरणार्थी बना दिया। हर घर जो मेरा था मुझ से छीन लिया। मगर अब मैंने हिन्दुस्तानी जनता के दिल में घर कर लिया है और इस घर से तुम मेरी बेदखली नहीं करा सकते।"

उसी अंधेरी रात में हिन्दुस्तानी बार्डर पेट्रोल ने एक साये को हरकत करते देखा तो बंदूक तानकर ललकारा—"होशियार, कौन जाता है?"

जवाब में एक लड़की की आवाज आई—

'उर्दू'

और रात के सन्नाटे ने उसी आवाज को प्रतिध्वनित कर दिया—

'उर्दू—उर्दू—उर्दू—'

दो हाथ

दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाज आई तो सखाराम की आँख खुल गई। हड़बड़ाकर उठ बैठा। कुत्ते कुछ ऐसे अंदाज में भौंक रहे थे जैसे रो रहे हों। अँधेरा तो जब वह सोया था तब भी था। मगर उसको ऐसा महसूस हुआ जैसे अँधेरा कुछ और गहरा हो गया है। अमावस की रात थी। चाँदनी का तो सवाल ही नहीं। लेकिन तारे भी न जाने कहाँ गायब हो गये हैं। बरसात का मौसम नहीं था। शाम को उसने देखा था कि आसमान पर बादल का एक छोटा-सा टुकड़ा भी कहीं नहीं है। शायद जाड़े की धुंध थी जिसने सितारों को अपनी काली चादर में लपेट रखा था। यह धुंध था या धुआँ था या धुएँ का बादल था इसमें सखाराम का गला घुटता हुआ महसूस होता था।

शायद यह उसका वहम ही हो। भला अँधेरे से भी किसी का गला घुटा है? शायद जैसे-जैसे वक्त करीब आ रहा है मुझे घबराहट हो रही है। उसने अपनी कलाई पर लगी हुई घड़ी देखी। अँधेरे में चमकने वाली सुइयाँ बता रही थीं कि चार बजने में पाँच मिनट हैं। बाजार के चौकीदार साढ़े चार बजे अपना पहरा खतम करके अपने-अपने घर चले जाते हैं। पौ फटेगी साढ़े पाँच बजे। उसको दुकानों का सफाया करने में बस यही एक घंटा लगेगा।

चोरी उसके लिये कोई नई बात नहीं थी। पिछले तीन बरस में कई बार उसने जेल की हवा खाई थी। दो बार बम्बई की पुलिस ने उसे तड़ीपार किया था। इस बार तो उन्होंने उससे साफ-साफ कह दिया था कि बम्बई में उसकी शक्ल भी नजर आई तो सीधा उसका

चालान कर देंगे चाहे उसने कोई जुर्म किया हो या न किया हो।

सो सखाराम पूना चला आया था। मगर यहाँ का मौसम चोरों के लिये ठीक नहीं था। रात को लोग सर्दी के मारे सब दरवाजे, खिड़कियां बंद करके सोते थे। पुलिस वाले कमबख्त भी हर वक्त चक्कर लगाते रहते थे। दो-चार हवलदार उसको पहचानते भी थे—"क्यों सखाराम! बाम्बे पुलिस ने कर दिया न तुझे तडीपार? याद रखना हम तडीपार नहीं करते। जरा सा शक भी हो तो सीधा जेलखाने में बद कर देते हैं।" इन हालात मे कोई शरीफ आदमी—या शरीफ चोर—करे तो क्या करे? दो-चार ही दिन मे जेब मे जो जमा पूँजी थी वह खत्म हो गई। सखाराम ने सोचा अपने गाँव वापिस चला जाए। पूना से सौ-सवा सौ मील पर ही था। मगर जाए तो कैसे? तीन बरस के बाद अपनी बीवी को क्या मुँह दिखाऊँगा? गाँव छोड़ते वक्त उसने विठोबा के मंदिर मे जाकर अपनी बीवी के सामने कसम खाई थी कि अब वह उस वक्त ही वापिस आयेगा जब उसके हाथ में चार पैसे होंगे ताकि साहूकार से अपनी जमीन छुड़ा ले, अपने झोंपड़े की मरम्मत करा ले और हल जोतने के लिये एक जोडी कोल्हापुरी बैलों को खरीद ले। बस, इतनी-सी दुनिया थी उनकी। दो एकड जमीन, एक जोड़ी बैल, एक हल, झोंपडे की चार दीवारें और फूंस की छत और सावित्री!

हरबार उसे अपनी बीवी सावित्री की याद आती थी तो सखाराम के दिल में दर्द की एक मीठी-मीठी-सी टीस उठती थी। गाँव-भर में एक छोकरी भी तो सावित्री जैसी नहीं थी। आम की कैरियों जैसी आँखें, यह लम्बे-लम्बे रेशमी जैसे मुलायम बाल जिनका जूड़ा बनाकर उसमें एक जंगली फूल लगा लेती थी तो सखाराम के मन मे कमल खिल उठते। दुबली, पतली मगर सुडौल जिस्म नौ गज की साडी और फँसी हुई चोली मे और भी गजब ढाती थी। हँसमुख ऐसी कि घर मे खाने को न हो फिर भी हर वक्त हँसती-मुस्कराती रहती थी। कोई सहेली हमदर्दी जताती तो कहती, "मुझे क्या चिन्ता है? मेरे घरवाले के मेहनत करनेवाले दो हाथ सलामत चाहिए। सब दलिद्दर दूर हो जायेंगे।"

महसूस हो रहा था कि उसका खेत, उसके बैल, उसका गाँव, उसकी सावित्री उसके करीब आते जा रहे हैं। और दिन-भर मेहनत करने के बाद जब वह इन्ही हाथो को तकिया बनाकर फुटपाथ पर सो जाता तो उसके ख्वाब मे सावित्री के पैरो की छागल सुनाई देती और वह अपने मछली जैसे सुडौल जिस्म को नौ गज की साड़ी मे लपेट उसके लिये भाकरी और साग और प्याज की गटि्ठयाँ लाती और खेत की मुंडेर पर ही बैठकर वह खाना खाते। और कभी-कभी बच्चों की तरह सावित्री निवाला बनाकर सखाराम को देती और कभी वह शरारत से सावित्री की उँगली काट लेता और जब वह इस पर खिलखिलाकर हँस पडती तो फिर वह निवाला बनाकर सावित्री के मुँह में देता और उसके नाजुक सफेद दाँत सखाराम की मजबूत खुरदरी उँगली को नरमी से अपनी पकड में ले लेते और फिर दाँतो की जगह होंठ ले लेते। सावित्री के अंगूरो जैसे ऊदे और रसभरे होंठ—और सखाराम को महसूस होता कि वह नरमी और प्यार के एक लहर में डूबता जा रहा है—डूबता जा रहा है—और वह नहीं चाहता कि कोई उसे डूबने से बचाए!

एक दिन सखाराम सुबह को देर मे उठा, अँगडाई लेकर रात भर की नींद का नशा दूर किया, फिर राम का नाम लेकर खडा हो गया तो उसे अपनी अंटी जहाँ वह सब रुपये रखा करता था हल्की लगी। घबराकर जल्दी से खोलकर देखा तो सब रुपया गायब था। छः महीने की मेहनत पर पानी फिर गया।

"कहाँ है वह बदमाश ?" वह बेतहाशा चिल्लाया।

"कौन बदमाश ?" किसी ने पूछा।

"जो मेरे करीब यहाँ फुटपाथ पर सो रहा था। रात को बडी देर तक मुझसे मीठी-मीठी बातें करता रहा। मैंने उसको बताया—हाँ, मैंने ही उसको बताया था—कि मेरे पास साढे तीन सौ रुपये जमा हो चुके हैं।"

एक बूढ़ा भिखारी, जो एक कोने मे बैठा सब कुछ देखता रहता था और उस फुटपाथ की सब खबरें रखता था, बोला—"अरे भीकू

सकते है।"

"मैं नही पीता।" सखाराम ने कहा।

"यही तो मुश्किल है कि तुम पीते नही हो। तभी तो अंटी मे इतने रुपये लिये फिरते हो। और फिर भी फुटपाथ पर सोते हो। पियो मेरे भाई, दारू तुम्हारे ही पैसे से आई है।"

यह कहकर उसने गिलास मे दारू उँडेल दी और गिलास सखाराम की तरफ बढाया।

सखाराम ने सोचा, "यह भी ठीक कहता है। मेरे पैसे ही की तो दारू पी रहा है।" उसने गिलास उठाकर मुँह से लगाया। एक बार तो बुरी बदबू आई। फिर दिल कडा करके वह पी गया। उसको पहले तो ऐसा लगा कि किसी ने चाकू से उसका गला अदर से चीर दिया है। मगर थोडे ही समय मे वह अनुभूति जाती रही। और उसका स्थान एक नर्म-नर्म गरमी ने ले लिया जो उसकी देह मे दौडती जा रही थी।

भीकू ने उसका गिलास फिर भर दिया था—"और पियो मेरे यार।"

सखाराम ने दूसरा गिलास भी पी लिया।

अब उसने गिलास वापिस मेज पर रखा ही था और भीकू उसमें तीसरा पेग उँड़ेलने के लिये दारू की बोतल उठा ही रहा था कि उसकी दृष्टि उसकी कलाई पर पडी जहाँ एक सुनहरी पट्टे की घड़ी जगमगा रही थी।

"यह भी मेरे पैसे से ली है?" वह चिल्लाया।

भीकू ने कलाई से घडी उतारकर सखाराम को दे दी। "यह लो मेरे यार। आज ही एक स्मग्लर से पचास रुपये मे ली है। असली विलायती घडी है। अँधेरे मे भी समय बताती है।"

ढाई वर्ष के बाद आज भी वह घडी सखाराम की कलाई पर लगी हुई अँधेरे मे समय बता रही थी। चार बजकर पाँच मिनट हुए थे। सखाराम ने सोचा, समय भी कितने धीरे-धीरे बीतता है। साढे चार बजे तो मैं अपना काम करूँ। और फिर उसको घड़ी से भीकू की याद आ गई। भीकू जो अब भी जेल की हवा खा रहा था परतु जिसने

सखाराम के रुपये चुराकर उसको चोरी का मार्ग दिखाया था।

पहले छोटी-मोटी चोरियाँ फिर वडी चोरियाँ मगर कभी सखाराम के पास इतने पैसे नही हुए कि वह गाँव वापिस जाकर अपनी जमीन छुड़ा लेता। दो बैल खरीद लेता, सावित्री के लिये दो-चार वढ़िया साढ़ियाँ खरीद लेता। एक तो चोरी का माल दुकानदारों को कौडी के भाव बेचना पड़ता था। दूसरे जो आता था वह खाने, पीने-पिलाने में खर्च हो जाता था। जेल मे फजलू ठीक कहता था, "यार, इस हराम की कमाई मे बरकत नही होती है।"

पूना मे एक दिन शाम को अँधेरा होते ही एक औरत का बटुआ छीनकर भागना चाहा। मगर उस कम्बख्त ने चीख-चीखकर आसमान सिर पर उठा लिया। चारों ओर से लोग दौड पडे थे। सखाराम ने बटुए मे से दस-बीस रुपये के नोट निकाल कर बटुआ सडक पर फेंक दिया। और खुद भागते-भागते एस० टी० के बस स्टैंड की ओर आ निकला। एक बस जाने को तैयार थी। वह उसी मे सवार हो गया। बस चल पडी। कंडक्टर ने पूछा, "कहाँ जाओगे?"

सखाराम ने, जिसका साँस दौडने से अब तक फूला हुआ था, जवाब दिया, "जहाँ भी यह बस जा रही है।"

बस कंडक्टर ने किसी स्थान का नाम लिया जो बस की घरघराहट में सुनाई न दिया। फिर उसने कहा, "सात रुपये होंगे।" सखाराम ने उसे चोरी का दस का नोट पकड़ा दिया बाकी रुपये लेकर जेब में रख लिये।

सुबह सवेरे बस अपनी मंजिल पहुँची तो सखाराम आँखें मलता हुआ उतरा। उसका विचार था कि कोई गाँव होगा। परन्तु यहाँ पहुँच कर देखा कि बड़ी रौनक है। अच्छा-खासा कस्बा है। बाजार भी है। बाजार मे दुकानें भी हैं। दुकानों में सामान भी है। चोरी करने के योग्य सामान।

सखाराम ने फैसला कर लिया कि दो-तीन रोज यहीं गुजारने चाहियें। कौन जानता है उसका भाग्य यहाँ ही खुल जाये। दिन-भर वह बाजारों में घूमता। किस दुकान में क्या-क्या सामान है, उसको दिमाग

मे याद करता। कहाँ साड़ियाँ मिलती हैं, कहाँ गहने, कहाँ रेडियो। किस-किस दुकान मे तिजोरियाँ है जो विश्वास है रुपयों से भरी होंगी। रात को चौकीदार बाजार का गश्त लगाते थे। मगर उसने देख लिया था कि साढे चार बजे सुबह वह अपने घर चले जाते हैं। बस वही वक्त ठीक रहेगा उसके काम के लिये। दो-चार दुकानों ही से उसका काम चल जायेगा और दुकानें खुलने के समय तक वह वहाँ से बहुत दूर निकल जाएगा।

शहर की सारी रौनक बंध के कारण थी। अधिकतर लोग वही काम करते थे। सो सखाराम ने सोचा क्यों न बंध को भी देख लिया जाय। बंध वाकई बड़ा जमी था। दो पहाडियो के बीच मे नदी के पानी को रोकने के लिए बंध बनाया हुआ था। बडे-बडे बिजली के कारखाने भी थे। बंध पर अब भी कुछ काम हो रहा था। सैकडों मजदूर काम पर लगे हुए थे।

एक मजदूर से सखाराम ने पूछा, "क्यो भई, यह इतना बड़ा बंध क्यो बनाया है?"

उसने कहा, "तुम इतना भी नही जानते। यहाँ पानी इकट्ठा करके नहरें निकालेंगे जो सूखे खेतो में पानी पहुँचाएगी।"

सखाराम ने सोचा, 'मेरे खेतो मे भी पानी आएगा?'

वह मजदूर अब कह रहा था, 'और यह बिजलीघर भी पानी की शक्ति से चलते है। यहाँ बिजली बनती है और इन तारों से दूर-दूर जाती है। जानते हो बम्बई की बिजली यही से जाती है।'

और सखाराम के दिमाग मे बम्बई की लाखो जगमगाती हुई रोशनियाँ उभर आई। इतनी दूर से बिजली वहाँ जाती है? फिर उसने सोचा, 'मगर मेरा गाँव तो केवल चालीस मील दूर है। यहाँ से वहाँ तक तो यह बिजली जाती नही है। मुझे इस बिजली से फायदा?'

एक ऊँचे टीले पर किसी मजदूर ने टीन की छत का एक झोपडा बनाया था। वह खाली पडा था। रात को नजर बचाकर सर्दी से बचने के लिए सखाराम उसी मे पडा रहता। वहाँ से एक तरफ बहुत दूर बंध पर लगी हुई रोशनियाँ नजर आती, दूसरी तरफ शहर के

मकानो और दुकानो की बत्तियाँ। वह सोचता इन रोशनियो के समुन्दर मे यही झोपड़ा एक अँधेरे का टापू है। फिर सोचता शायद अँधेरा झोपडे मे नही है, मेरे मन मे है।

नही, यह अँधेरा कुछ और प्रकार का था। इसमे तो वध की रोशनियाँ भी डूब गई थीं। शहर की रोशनियाँ भी डूब गई थी। अँधेरे के समुद्र की तह मे दूर कही धुँधली-धुँधली-सी टिमटिमा रही थी। उसका अपना गला भी घुटता नही मालूम होता था। ऐसा लगता था कोई दुनिया का गला घोंट रहा है। संभव है यह मेरा वहम ही हो। उसने सोचा और एक बार फिर घडी की अँधेरे मे चमकने वाली सुइयों की ओर देखा। चार बजकर बीस मिनट हुए थे। अब उसे चलना चाहिये। बाजार पहुँचने मे कम से कम दस मिनट तो लगेंगे। यह सोचकर वह खड़ा ही हुआ था कि जमीन के अन्दर से एक गड़गड़ाहट की आवाज आई जैसे सुरंग मे कोई रेल चल रही हो। या हवाई जहाज बहुत नीचे उड रहा हो और छत पर गिरने ही वाला हो, साथ ही उसके पैर के नीचे से जमीन जैसे सरक गई हो। कदम डगमगाए तो उसने अँधेरे मे दीवार का आधार लेने का प्रयत्न किया। हाथ मे छुआ तो उसको ऐसा लगा जैसे दीवार भी लडखड़ा रही है। उसने शाम को शराब पी होती तो वह समझता कि यह सब नशे का परिणाम है। परन्तु उसने तो चार दिन से दारू को हाथ भी न लगाया था। फिर यह सब क्या—

'भूचाल!' एकदम यह खयाल बिजली की तरह उसके दिमाग मे कौंधा और अगले ही क्षण झोपड़े की लड़खड़ाती हुई दीवार और खड़खडाती हुई टीन की छत एकदम उसके सिर पर आ रही।

जब उसको होश आया तो सबसे पहले जो चीज उसने महसूस की वह गंधक की तेज़ बू थी। और एक दम घुटनेवाला धूल-मिट्टी का बादल। अँधेरा अब भी इतना घना था कि उसको चाकू से काट सकते थे। सखाराम को अपने माथे पर पानी की एक लकीर चलती हुई ज्ञात हुई। टटोलकर देखा तो मुँह से 'सी' निकल गई। सिर मे गहरी चोट आई थी जिसमे से ख़ून रिस रहा था। टाँगो पर, बाजुओं

पर, एक ओर चेहरे पर भी चोटें आई थी। किन्तु यह समय साधारण चोटो की परवाह करने का नही था। जख्मों की टीस उसको झिझोड़कर बेहोशी से बाहर निकाल लाई थी। और अब एक ही विचार उसके मस्तिष्क में घूम रहा था। इस झोंपड़े की तरह बाजार मे दुकानों की दीवारें और छतें भी गिर गई होंगी। उसको ताले तोड़ने का कष्ट भी न करना पड़ेगा। उसने अपनी घड़ी देखी। पूरे साढ़े चार बजे थे। भूचाल आए केवल दस मिनट हुए थे।

टीन का पतरा जो उसके सिर पर गिरा था, उसको हाथ से हटा कर वह उठ खड़ा हुआ। चारो तरफ गिरी हुई दीवारो की ईंटों के ढेर थे। अँधेरे मे टटोलता, लँगड़ाता, गिरता-पड़ता वह अन्दाजे मे शहर की ओर चल खड़ा हुआ। अँधेरा अब एक हल्के धुँधलके में परिवर्तित हो रहा था। किन्तु बंध पर और शहर मे सब जगह बिजली की रोशनियाँ बुझ गई थी। अब तो उसका काम और सुलभ हो गया था।

सारा शहर एकदम गिर पड़ा था। जैसे घर न हो बच्चो के बनाये हुए मिट्टी के घरौंदे हो। जमीन में धूल के बादल उठ रहे थे। ईंटो, पत्थरों, टीन के पतरों के नीचे दबे हुए आदमी—मर्द, औरतें, बच्चे जो मर गये थे अथवा बिल्कुल बेहोश नही हो गये थे, वे चिल्ला रहे थे, रो रहे थे, सिसक रहे थे, बिलख रहे थे, कराह रहे थे। एक ने एक छाया-सी पास से गुजरते देखी तो चिल्लाया—"भाई, मुझे ईंटों के इस ढेर मे से निकालो। शायद मेरी टाँगें जाती रही हैं।" मगर सखाराम को उस समय एक ही धुन थी। वह किसी के प्राण बचाने के लिये तैयार नही था। आज भगवान ने उसे सचमुच छप्पर फाड़कर दौलत दी थी। ऐसा मौका वह खोनेवाला नही था। दोहाथो से जितना कुछ समेट सका वह लेकर वहाँ से चल देगा। और जब तक लोगों को होश आएगा, अपने गाँव, अपनी सावित्री के पास पहुँच जाएगा।

अँधेरे में गिरता-पड़ता, सँभलता, ठोकरें खाता, वह बाजार की तरफ चला जा रहा था। कहीं-कहीं मकानों की दीवारें बीच सड़क पर आ रही थीं। ईंट-पत्थर के ढेर से बचने के लिये सखाराम को गिरे हुए घरों में से रास्ता बनाना पड़ता। एक बार तो उसको महसूस हुआ

कि उसका पैर किसी नरम चीज पर पडा है । शायद किसी की टाँग थी या हाथ था । एक हल्की-सी 'आह' सुनाई दी और फिर सखाराम आगे बढ गया ।

सखाराम ने सुबह के धुंधलके मे देखा कि बाजार मे किसी दुकानो की छत या दीवार सलामत नही बची थी । दुकानो का सब सामान बिखरा पडा था या ईंट-पत्थरो के ढेर के नीचे दबा हुआ था । सबसे पहले सखाराम ने साडियो की दुकान से दस-पन्द्रह साडियाँ घसीटी । एक साडी को दुहराकर जमीन पर फैलाया । उसमे सब साडियो का ढेर लगाया । कुछ कपड़े के थान डाले । पास की दुकान से दो रेडियो लेकर उनको रखा । एक ज्वेलर की दुकान के मलबे में गहने बिखरे हुए थे । सखाराम ने टटोल-टटोलकर उठाए । यह देखने का समय नही था कि सोने के है या चाँदी के । एक तिजोरी औंधी पडी थी उसको सीधा करने का प्रयत्न किया किन्तु वह टस से मस न हुई । एक और दुकान का कैश बाक्स उडकर कही से कही पहुँच गया था । उसको खोलने की कोशिश की । बडा भारी था । जरूर रुपये भरे होंगे । जब न खोल सका तो बंद का बंद ही ढेर मे शामिल कर लिया । साडी का गट्ठर बाँधा । अब तो वह इतना बड़ा हो गया था कि बडी कठिनाई से दोनों हाथों से उठाकर उसने सिर पर रखा था । वजन काफी था । उसकी टाँगें लडखडाने लगी । परन्तु उसने जी कडा करके कदम बढाए ताकि सुबह होने से पहले वहाँ से बाहर निकल जाए ।

धीरे-धीरे आसमान में सवेरा उभर रहा था । पूरब की तरफ बादल, पहाडियाँ, बंध, हल्की-हल्की परछाइयाँ-सी अब दिखाई दे रही थी । धीरे-धीरे शहर के खण्डहर भी धरती पर उभर रहे थे । हर तरफ सन्नाटा था और तबाही । ऐसा लगता था शहर मर गया, दुनिया मर गई, केवल एक मनुष्य जीवित है । और वह दोनों हाथो से दुनिया का धन बटोरकर ले जा रहा है ।

नही (उसने सोचा) कोई और भी जिन्दा है ! एक बच्चे के रोने की आवाज ने सखाराम को चौंका दिया । जैसे यह आवाज बाहर से न आई हो, खुद उसके मन के अंदर से आई हो । उसने मुड़कर देखा ।

एक घर की छत और दीवारें ढेर हो चुकी थी। उन्ही में एक ओर बाप मरा पडा था, पास ही माँ। और उन दोनो लाशो के करीब ही एक-डेढ साल का बच्चा जो किसी कारण बच गया था, ईंटो के ढेर पर बैठा दहाडें मार-मारकर रो रहा था।

सखाराम ने बच्चे को देखकर फिर ऐसे नजर फेर ली जैसे बच्चे ने उसकी चोरी पकडी हो। जल्दी-जल्दी कदम बढाता कि इतनी दूर पहुँच जाए कि बच्चे की आवाज उसके कानो तक न पहुँचे। मगर बच्चे ने पहले से भी ज्यादा जोर से रोना शुरू कर दिया। चलते-चलते कदम आप-से-आप रुक गये। उसको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह उसका अपना बच्चा हो जो हमेशा उनके सपनो मे आता था किन्तु जिसने अब तक सावित्री की कोख से जन्म न लिया था।

उसने मुडकर बच्चे की तरफ देखा। सर पर गट्ठर उठाये उल्टे पाँव उसके नजदीक गया। सोचा, किसी तरह इस गठडी को भी ले चलूँ और इस बच्चे को भी उठा लूँ। मगर हाथ दो ही थे। एक बोझ को सम्भाल सकते थे या बच्चे को गोद मे ले सकते थे।

उसने सिर से गठडी उतार फेंकी। दौडकर बच्चे के बाप के पास गया। बिचारे के सिर पर एक भारी पत्थर गिरा था। कब का दम तोड चुका था। माँ की नाडी पर हाथ रखा। हाथ-पाँव ठंडे हो चुके थे। फिर उसने बच्चे की तरफ हाथ फैलाये। बच्चा ठुमक कर उसकी गोद मे आते ही खामोश हो गया। जैसे उसे अपनी मंजिल मिल गई हो।

सखाराम ने एक नजर उस गठडी की तरफ देखा जिसमे दुनिया की हर दौलत मौजूद थी। फिर दोनो हाथों में बच्चे को सम्भालकर अपनी छाती से लगा लिया और चल खड़ा हुआ।

दूर बंध के पीछे सूरज बादलो में से अपना सिर निकालकर कोयना नगर की तबाही देख रहा था। मगर सूरज की एक नरम किरन, सखाराम और उसकी छाती से लगे हुए बच्चे पर पडी और बच्चा, जिसकी आँख मे अब तक आँसू थे, आप-से-आप मुस्करा दिया।

लहू पुकारेगा

दो इन्सान एक-दूसरे को अपनी आँखों से नहीं, अपनी बन्दूक की अंधी आँख से देख रहे थे।

और यह आँख सिर्फ निशाना ताकती है और कुछ नहीं देखती—यह नहीं देखती कि सामने वाला गोरा है या काला या पीला! यह नहीं देखती वह बूढ़ा है या जवान है या बच्चा, मर्द है या औरत। न यह देखती है कि वह कुँवारा नौजवान है, जिसकी पिछले महीने ही मँगनी हुई है और जो लड़ाई के मोर्चे में भी हर रोज अपनी मंगेतर को खत भेजता है।

और सो यह अंधी आँखें कई मिनट तक एक-दूसरे को घूरती रहीं। चारों तरफ पहाड़ी की ढलानें बर्फ से ढकी हुई थीं। ऊपर नीला आसमान फैला हुआ था और इसमें उड़ते हुए सफेद पक्षी ऐसे लग रहे थे, जैसे मानसरोवर झील के शीतल नीले जल में चाँदी की चमकती मछलियाँ तैर रही हों। हर तरफ शान्ति का ठंडा सन्नाटा था और इस सन्नाटे में नीले आकाश के नीचे आग से भरी हुई दो अंधी काली आँखें एक-दूसरे को घूर रही थीं।

और फिर एकसाथ दो गोलियाँ चलने की आवाज ने सन्नाटे को ऐसे तोड़ दिया, जैसे शरारती बच्चे का पत्थर खिड़की के काँच को तोड़ देता है। और चारों तरफ फैली हुई बर्फ से ढकी हुई पहाड़ियों में इस आवाज का तड़ाका गूँजता रहा, चट्टानों से टकराता, घाटियों को फलाँगता, इधर से उधर, उधर से इधर, जैसे कोई दीवाना पागलखाने की पथरीली दीवारों को अपने सर से तोड़कर बाहर निकलने की

कोशिश कर रहा हो।

गरम खून की दो लकीरें बर्फ की सफेदी पर फैल गयी, फैलती गयी फिर ठंडी हो गयी, फिर जम गयी।

और वह जो बहुत दूर से चलकर वहाँ आया था, वह खून की उन बहती हुई, जमती हुई लकीरों को देखता रहा, जो बर्फ के सफेद कागज पर न जाने क्या लिख रही थी। यह कौन-सी लिपि है? वह सोचता रहा। यह कौन-सी भाषा है? खून की लाल रोशनाई से क्या संदेश लिख दिया गया है? और वह जो बहुत दूर से चलकर इस विदेशी धरती पर मरने और एक अनजाने, इन्सान को मारने आया था, उसको ऐसा लगा कि वह चैन से मर भी नही सकता, जब तक वह यह न मालूम कर ले कि खून की रोशनाई से बर्फ पर जो शब्द लिखे गये हैं, उनका मतलब क्या है?

खून!

रोशनाई!

बर्फ की चमकती हुई सफेदी!

खड़िया से लिखी हुई स्कूल की तख्ती!

मरने वाले की याद हिमालय की चोटियों को फलाँगती अपने वतन की तरफ जा रही थी। जवानी की पथरीली चट्टानों और लड़कपन की ढलानो पर से फिसलती बचपन की हरी-भरी घाटियो की तरफ लौट रही थी, जहाँ सदा बहार छायी रहती है और चेरी की झाड़ियों में कोपलें हमेशा सितारों की तरह चमकती रहती है।

और अब वह एक गुनगुनाती हुई पहाड़ी नदी के किनारे बाँस की खपच्चियों से बने हुए स्कूल में चौबीस और बच्चो के साथ बैठा हुआ था। और उसके सामने तख्ती पर ब्रुश से बनाये हुए तस्वीरो जैसे अक्षर थे और उसके कान मे बूढे गुरु शान कू की आवाज थी जो कह रही थी :

"चाग-चुन, पढो तख्ती पर क्या लिखा है?"

"मुझे नही मालूम—मुझे पढना नही आता, गुरुजी।"

"तुम आठ बरस के हो गये हो और पढना नही आता? बड़े शर्म

की बात है।"

"मैं एक गरीब किसान का बेटा हूँ, गुरुजी।"

"किसान के बेटों के लिए भी पढ़ना-लिखना जरूरी है, चांग-चुन! अब इन तस्वीरों जैसे अक्षरों को ध्यान से देखो। पहली तस्वीर में तुम्हें क्या दिखायी देता है?"

चाग-चुन ने ध्यान से उस तस्वीर को देखा और कहा, "दो टाँगें, दो हाथ, एक सर। गुरुजी! ऐसा लगता है, जैसे कोई आदमी खड़ा हो।'

"बिलकुल ठीक। इसका मतलब है—इन्सान। अब दूसरी तस्वीर देखो, यह गोल घेरा एक झील है, जैसे हांग-चाऊ शहर के पास झील है। समुद्र के पानी में लहरों की हलचल होती है, मगर झील का पानी शान्त होता है, इसलिए इस तस्वीर का मतलब है—शान्ति!"

और इसी तरह बूढ़े शान-कू ने एक-एक तस्वीरों जैसे अक्षर का मतलब समझाया और फिर चांग-चुन से कहा, "अब सारा पढ़कर सुनाओ।"

चाग-चुन ने पढ़ा, "इन्सान शान्ति चाहता है। चारों समुद्रों में फैली हुई दुनिया के सारे इन्सान भाई-भाई है।"

बूढ़े शान-कू ने कहा, "इससे बड़ी सच्चाई दुनिया में कोई नहीं है।" फिर एक नयी तख्ती चाग-चुन के सामने रखकर उस पर अपने ब्रुश से एक नयी तस्वीर बना दी और कहा, "याद रखो, चाग-चुन, ज्ञान प्राप्त करने का एक ही तरीका है। जब भी कोई अनजानी लिखावट सामने आये उसके अन्दर छुपा हुआ अर्थ ढूंढने की कोशिश करो।"

और अब उसके जीवन के अन्तिम क्षणों में प्रकृति ने बर्फ की सफेद चादर पर खून की लाल रोशनाई से न जाने क्या लिख दिया था और चाग-चुन मरते हुए भी जिन्दा रहने पर मजबूर था, जब तक उसे उस लिखावट का मतलब न मालूम हो जाय।

अपने खून की लकीर के साथ-साथ उसकी निगाह चलती गयी यहाँ तक कि बर्फ पर जमे हुए उसके खून की लकीर में उस दूसरे के जमे

हुए खून की लकीर आ मिली। और चाग-चुन ने देखा कि यह खून भी इतना ही लाल है जितना लाल उसका अपना खून है। और उस दूसरे खून की लकीर के साथ-साथ चलती हुई उसकी निगाह उस चेहरे तक पहुँच गयी।

कुछ क्षण पहले अपनी बन्दूक की काली अंधी आँख से उसने इस चेहरे को देखा था और उस वक्त वह एक दुश्मन का डरावना और भयानक चेहरा था। मगर बन्दूक के साथ उसकी काली अंधी आँख पर भी बर्फ की सफेद चादर ढकी जा चुकी थी। इस वक्त चाग-चुन उस दूसरे के चेहरे को अपनी आँखों से देख रहा था। उन आँखों ने जिन्होंने हाग-चाऊ के पास झील के किनारे बैंत के छरहरे पेड़ों के काँपते साये देखे थे और जिन्होंने मेमी के पीले गुलाब जैसे हुस्न को देखा था। और जिन्होंने आखिरी बार विदा होते हुए मेमी की गोद में सोये हुए मासूम बच्चे की मोहनी सूरत को अपने अन्दर समेट लिया था। और आज वही निगाहें उस दुश्मन के चेहरे को देख रही थीं, जो मुर्दा होते हुए भी जिन्दा लगता था।

और अचानक चाग-चुन को ऐसा लगा कि उस अनजाने हिन्दुस्तानी सिपाही के मुर्दा होंठों की मुस्कराहट भी उससे कुछ कह रही है। मगर क्या कह रही है? गोली खाकर मरते हुए कोई कैसे मुस्करा सकता है? उन दोनों ने एक-दूसरे की गोली सीने पर खायी है। दोनों का लहू बहकर बर्फ पर जम गया है। फिर ऐसा क्यों है कि एक मरकर भी मुस्करा रहा है और दूसरे को मरते हुए भी 'क्या' और 'कौन' और 'कहाँ' और 'क्यों' के सवाल भूत बनकर परेशान कर रहे हैं, डरा रहे हैं, धमका रहे हैं। न जीने देते हैं न मरने देते हैं।

क्यों? मैं क्यों मर रहा हूँ? इस हिन्दुस्तानी को मैंने क्यों मारा है? चीनी फौजें हिन्दुस्तान पर हमला क्यों कर रही हैं? क्यों? क्यों? क्यों? क्यों?

क्या? कौन? कहाँ? क्यों?

"संसार का सारा ज्ञान इन चार शब्दों में सिमटा हुआ है—सारा

भूगोल, सारा इतिहास, अर्थशास्त्र। विज्ञान का तो आधार ही इन चार सवालों पर है। क्या? कौन? कहाँ? क्यों? जैसे-जैसे तुम यह सवाल करते जाओगे ज्ञान और विज्ञान के दरवाज़े तुम्हारे लिए खुलते जायेंगे।"

यह आवाज़ उसके प्रोफेसर लिन-ताई की थी, जिसने कॉलेज में चाग-चुन को न सिर्फ भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र की साइंस पढ़ायी थी बल्कि क्लास-रूम के बाहर उसको उस बड़े और महत्त्वपूर्ण विज्ञान से भी परिचित कराया था जो मानव-इतिहास और विकास-क्रम के अँधेरे कोनों को उजागर करता है। प्रोफेसर लिन-ताई ही की ज़बानी चाग-चुन ने पहली बार क्रान्ति के बारे में सुना था, मार्क्स का नाम सुना था। और यहाँ तक कि उसने एक दिन कहा था, "प्रोफेसर, मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं अब तक अँधेरे में ही था। यही वह बुद्धि-वाद का नया धर्म है, जिसको अपना कर हमारी जनता भ्रम और अज्ञान और अन्याय के अँधेरे से बाहर निकल सकती है।"

और प्रोफेसर लिन ने मुस्कराकर कहा था, "चाग-चुन, मशाल रास्ता भी दिखा सकती है और खलिहानों में आग भी लगा सकती है। ऐसा न हो कि बुद्धिवाद की एक मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करने लगो और इंसानों को पुराने भ्रमों से निकाल कर एक नये भ्रम में फँसा दो

अगर तुम सचमुच बुद्धिवाद का बोलबाला चाहते हो तो हर हालत में हर बात को, हर समस्या को, हर सच्चाई को, हर नियम को इन चार सवालों की कसौटी पर परखना न भूलना—क्या? कौन? कहाँ? क्यों? और खासकर क्यों?"

मेमी को न जाने यह 'क्यों' कहने की आदत थी।

जब वे दोनों साथ पढ़ते थे और चांग-चुन को अपनी बादामी आँखों वाली, पीले गुलाब जैसी सुन्दर क्लासफ़ेलो से मुहब्बत हो गयी थी तो उसने एक दिन मौका पाकर पूछ लिया था, "मेमी, मुझसे शादी करोगी?"

"क्यों?" मेमी ने अनायास ही भोलेपन में पूछा था, "तुमसे शादी क्यों करूँ?"

और चाग-चुन बौखला-सा गया था। "इसलिए···मेमी—कि मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ ?"

"क्यों ?" मेमी ने फिर वही सवाल किया था, "तुम मुझसे मुहब्बत क्यों करते हो ?"

"यह भी कोई सवाल है ? मैं तुमसे इसलिए मुहब्बत करता हूँ कि···वस···मैं तुमसे मुहब्बत करता हूँ···मतलब यह है कि तुम मुझे अच्छी लगती हो।"

"क्यो अच्छी लगती हूँ ?" मेमी ने फिर सवाल किया था और खिल-खिलाकर हँस पडी थी और हँसती ही गयी थी।

"हँसो मत, मेमी," उसने प्यार से डाँटकर कहा था।

मेमी ने एक पल के लिए हँसी रोककर पूछा था, "क्यों न हँसूँ ?" और फिर वह हँसने लगी थी।

और इस बार चाग-चुन ने झुंझलाकर मेमी का हाथ पकड़कर अपनी तरफ घसीट लिया था। और उसके कोमल गुदगुदे शरीर को अपनी बाँहो मे भीचकर मेमी के हँसते हुए होठो पर अपने जलते हुए होठ रख दिये थे।

मगर जब वे अलग हुए तो मेमी ने फिर शरारत से मुस्कराकर सवाल दुहराया था : "क्यों ?"

"क्यो ?"

मेमी की गोद मे अब एक बरस का बच्चा था। मगर उसकी जबान पर वही पुराना सवाल था, "क्यो जा रहे हो ?"

और चाग-चुन ने जवाब दिया था, "इसलिए जा रहा हूँ कि देश मे क्रान्ति लानी है और जनता को कुओमिताग के अत्याचार से छुटकारा दिलाना है।"

और फिर एक बार उसने अपनी फौजी वर्दी पहनी थी। फिर उसने कोने में रखी हुई अलमारी में से अपनी पुरानी बन्दूक निकाली थी। फिर मेमी ने अपने तीनों बच्चों को गोद मे समेटते हुए कहा था : "क्यों ? अब क्यो जा रहे हो ?"

और इस बार वह कोई जवाब न दे सका था।

मेमी ने फिर सवाल दुहराया था, "क्यो जा रहे हो ?"

और चाग-चुन ने जवाब दिया था, "हुक्म है।"

"हुक्म है—" मेमी चिल्लायी थी। "मगर क्यो ? वे जो तुम्हें भेज रहे हैं, क्या तुमने उनसे पूछा नही कि वे क्यो तुम्हे भेज रहे है ?"

और अब झुँझलाकर चांग-चुन ने जवाब दिया था जो देते हुए अब तक हिचकिचा रहा था, "मेमी, हमारा काम सवाल करना नही है। हमारा काम हुक्म बजा लाना है।"

मेमी ने उसकी तरफ ऐसे देखा था जैसे वह कोई अजनबी हो, जिससे वह पहली बार मिली हो। "यह तुम कह रहे हो ? चांग-चुन ? प्रोफेसर लिन-ताई के शिष्य ? याद है उन्होने क्या कहा था · हर बात को, हर समस्या को, हर सच्चाई को, हर सिद्धान्त को इन चार सवालो की कसौटी पर परखना न भूलना : क्या ? कौन ? कहाँ ? क्यो ? और खासकर 'क्यो' ? सो मैं तुम्हे नही जाने दूँगी, जब तक तुम मुझे नही बताओगे कि कहाँ जा रहे हो और क्यों जा रहे हो ?"

"क्यो जा रहा हूँ—यह मुझे नही मालूम। यह मुझे नही बताया गया। और कहाँ जा रहा हूँ—यह मुझे बताने की इजाजत नही है। मगर यहाँ से बहुत दूर। कई हजार मील दूर। दक्खिनी सरहद पर जाना है।"

यह सुनकर मेमी सन्न हो गयी थी और दूसरे कमरे से एक कमजोर आवाज आयी, "सरहद पर लडने जा रहा है रे, चांग-चुन ? मुझसे तो मिलता जा, बेटा।"

मेमी की आँखो की झुलसने वाली आग से बचने के लिए चाग-चुन अपने बाप के कमरे मे चला गया था, जहाँ सत्तर साल का बूढा और अपाहिज चांग-सुन पुरानी किताबो से घिरा हुआ अपने पलंग पर पड़ा हुआ अपनी जिन्दगी के आखिरी दिन गिन रहा था।

"क्या है, बाबा ?"

मगर इतनी ही देर मे चांग-चुन का दिमाग कहीं से कहो पहुंच

चुका था।

"पागल हैं, सब पागल हैं !" वह बुड़बुड़ा रहा था।

"कौन पागल हैं, बाबा ?"

"वे सब लोग पागल हैं, जो बिना कारण किसी दूसरे शान्तिप्रिय देश के खिलाफ युद्ध करते हैं।"

"बाबा !" चाग-चुन ने घबरा कर धीमी आवाज मे कहा, "ऐसी बातें करना खतरनाक है।"

मगर बूढ़े के गले से एक खोखली-सी आवाज निकली थी, जो हँसी भी थी और खाँसी भी। "जिसने यह कहा है उसे तुम्हारी पुलिस भी नही पकड सकती।"

"क्यो नही पकड़ सकती ?"

"इसलिए कि उसे मरे हुए तीन हजार बरस हो चुके है।"

"ओह, तो यह पुरानी कहावत है। मगर ऐसी बातें दुहराना भी अपराध है। हमे अपनी सरकार का वफादार रहना चाहिये।"

"वफादार ? वफादार ?" बूढ़े ने कई बार दुहराया, फिर एक फटी-पुरानी किताब के पन्ने उलटकर पढना शुरू किया—

"लाओ की सौगंध।

जो अपने हाकिमों के सच्चे वफादार हैं वे हाकिमो को फौजबंदी और जगबाजी मे रोकेंगे। इसलिए कि जग करने वाले का अंजाम खराब होता है। जहाँ फौजें जाती हैं वहाँ फूलों की जगह काँटे उगते हैं और खेतो मे अनाज की जगह अकाल की फसल होती है।"

"बाबा, यह तुम किन क्रान्ति के दुश्मनो की लिखी हुई चीजें पढ रहे हो ?"

"यह लाओ-त्से है, चाग-चुन ! उसको भी तुम्हारी पुलिस नहीं पकड़ सकती। दो हजार बरस के बाद तो कब्र मे उसकी हड्डियाँ भी नहीं रही होंगी।"

"लाओ-त्से ! उस दकियानूस फिलासफर को आज की राजनीति का हाल क्या मालूम था बाबा ? जानते हो हमारी फौजें कहाँ जा रही हैं ?" और फिर चाग-चुन ने अपने बाप के बूढ़े कान में चुपके से

वह नाम दुहराया था जो उसने मेमी को भी नही बताया था : "हिन्दुस्तान !"

मगर चांग-चुन ने जैसे कुछ सुना ही नही । पुरानी किताब के पन्ने उलटते हुए उसने अपनी चुंधी आंखो पर जोर डालकर पढ़ना शुरू किया—

"हिन्दुस्तान के लोग बड़े शान्ति-प्रेमी और वचन के पक्के होते हैं। ये किसी को धोखा नही देते और हर देश से उनके सम्बन्ध मित्रता और सद्भावना के है।"

"बाबा, यह उल्टी-सुल्टी बातें तुम्हे किसने सिखायी हैं ? कही तुम रेडियो मास्को तो नही सुनते रहे हो ?"

"हो सकता है चौदह सौ बरस पहले ह्यु एन-सांग रेडियो मास्को ही सुनता हो ।"

"बाबा, तुम हिन्दुस्तान के बारे मे इन पुरानी किताबों पर भरोसा मत करो। हिन्दुस्तानी फौजो ने चीन पर हमला कर दिया है । हम अपने देश की रक्षा के लिए जा रहे हैं।"

और बूढे ने जवाब मे बुड़बुड़ाते हुए दो छन्द पढ दिए—

'इन सरहदों पर—जहां केवल निर्जन हिम-क्षेत्र है, इन सरहदो पर—जिन पर कितना खून बह चुका है, चीन के सम्राट अपने साम्राज्यों का विस्तार बढ़ाने के लिए सेनाएं भेजते रहे हैं—सिपाहियो का खून बहाते रहे हैं।"

"बाबा, मुझे मरे-गड़े कवियो की बकवास सुनने का वक्त नही । मुझे इजाजत दो, मैं जा रहा हूं ।"

"जाओ बेटा, तुम मेरी इजाजत बिना इस दुनिया मे आये थे और बिना मेरी इजाजत इस दुनिया मे जाओगे।"

जीवन के अंतिम क्षणों मे एक बार फिर उसकी नजर खून की लकीर के साथ चलती हुई उस दूसरे के चेहरे तक पहुंची और उसने सोचा—यह कमबख्त मरकर भी मुस्करा रहा है, जैसे हारकर वह जीत गया हो। मरकर अमर हो गया हो। इसलिए कि वह अपने देश मे दफनाया जायेगा और मैं परदेश मे। उसे उसके वतन की मिट्टी एक मां की तरह

प्यार से अपनी गोद मे ले लेगी। उसके माँ-बाप, उसके बीवी-बच्चे उसकी कब्र पर फूल चढाने आयेंगे।

मगर यह मुस्कराने वाला कौन है ?

मेरे हाथ से उसकी मौत हुई है और मुझे यह नही मालूम कि वह कौन है। क्या है ? वह यहाँ मेरे हाथों मरने क्यो आया था ? कुछ ही क्षण मे मैं भी मर जाऊँगा और ये सवाल भी मेरे साथ कब्र मे दफन हो जायेंगे।

अपने शरीर से धीरे-धीरे रिसती हुई जिन्दगी को उसने एक क्षण के लिए रोक लिया। अपने घाव को बायें हाथ से दबाकर उसने दाहिने हाथ के सहारे बर्फ पर घिसटना शुरु किया। दूरी कुछ ही गज थी मगर उसे ऐसा लगा, जैसे वही तीन हजार मील हो। जैसे एक बार फिर वह हाग-चाऊ से बोमदी-ला तक का सफर कर रहा है। और इस लम्बे सफर मे एक खून की लकीर उसे रास्ता दिखाती रही। यहाँ तक कि वह उसे भारत की सीमा के पार ले आयी, जहाँ एक मुस्कराता हुआ चेहरा उसकी राह देख रहा था।

उसकी ठण्ड से अकडी हुई उँगलियो ने जल्दी-जल्दी हिन्दुस्तानी सिपाही की तलाशी ले डाली—तीन पत्र किसी भारतीय भाषा मे लिखे हुए। एक बटुआ, उसमे दो तस्वीरें। एक बड़ी-बडी काली आँखो वाली नौजवान औरत। तीन बच्चे—दो लड़के, एक लडकी। लिन कू, छोटा चिगू, छोटी मैमी ! नही। उसके दिमाग को क्या हो गया है ? ये उसके अपने बच्चे नही है। ये तो हिन्दुस्तानी सिपाही के बच्चे थे। बटुए के एक और खाने मे से एक कार्ड निकला। चाग-चुन ने सोचा, इस पर जरूर इसका नाम-पता लिखा होगा। अब मैं मरने से पहले यह जान सकूँगा कि मैंने किसकी जान ली है और किसने मेरी जान ली है।

कार्ड पर अंग्रेजी मे कुछ लिखा था। चाग-चुन ने बहुत दिन हुए कॉलिज मे अंग्रेजी पढी थी। अब उसने हिज्जे करके धीरे-धीरे पढा :

"लाइफ मेंबर

इंडिया-चाइना फ्रेंडशिप एसोसियशन।"

जीवन-भर के लिए भारत-चीन मैत्री संघ का सदस्य ।

चाग-चुन की नजरो में वह कार्ड, वह चेहरा, धरती-आकाश सब घूम गये ।

जीवन-भर के लिए---? उसने सोचा, मगर अब तो जीवन ही नही रहा । उसका जीवन किसने छीना ? चीनी ने ? भारत-चीन मैत्री क्या थी ? क्यो थी ? कहाँ थी ?

मगर इसकी जिन्दगी क्यो नही रही ?

किसने इसका खून किया ?

और क्यो ?

वह सवाल जो अब तक सहमा हुआ, डरा हुआ उसके दिमाग मे छुपा बैठा था, अब जीवन के अन्तिम क्षण मे झिझकता हुआ बाहर निकल आया ।

क्यो ?

वह कार्ड उसके हाथ मे गिर गया और चाग-चुन ने बर्फ पर गिरकर उसे उठाना चाहा । मगर अब ठण्ड मे—बर्फ की ठण्ड मे और मौत की ठण्ड से---उसकी उँगलियाँ अकड़कर संज्ञाहीन हो गयी थी । दोनों हाथो मे कोशिश करने पर भी वह उस कार्ड को न उठा सका है।

मगर जब उसने अपने हाथ उठाकर अपनी बेकार उँगलियों को देखा तो उन पर खून लगा हुआ था ।

किसका खून ?

उसने नीचे बर्फ पर देखा तो यह वही जगह थी, जहाँ खून की दो लकीरें मिलकर एक हो गयी थी ।

उसके हाथों पर उन दोनों का खून लगा हुआ था---उस हिन्दुस्तानी का खून और उसका अपना खून ।

और फिर चाग-चुन के खून-भरे दोनों हाथ नीले आकाश की ओर एक प्रश्नसूचक चिह्न बनकर उठ गये ।

"क्यों ?" जीवन के अन्तिम क्षण मे उसे ऐसा लगा कि जैसे मेमो उससे सवाल कर रही है—क्यो ? जैसे उसका बूढा बाप उससे सवाल

कर रहा है—क्यों ? बेटा, क्यों ? जैसे उसका सबसे छोटा बच्चा तुतलाकर उससे पूछ रहा है—क्यों, बाबा ?

मौत की हिचकी के साथ उसके मुंह से एक ही शब्द निकला :

"क्यों ?"

मगर खून से रंगीन बर्फ से टकराकर एक मरती हुई आवाज में दुहराया हुआ यह सवाल जिन्दा हो गया।

"क्यों ?"

बर्फ से ढकी हुई सारी पहाड़ियाँ इस सवाल से गूंज उठीं :

"क्यों ?"

शान्त असीम नीला आकाश, जो भारत से लेकर चीन तक छाया हुआ था, इस सवाल से गूंज उठा और उसमें उड़ती हुई कड़ाकुलों की डार, जो हिमालय के बर्फानी जाड़े से बचने के लिए पेकिंग की ओर लौट रही थी, इस सवाल की चोट से फड़फड़ा उठी।

चट्टान और सपना

रमना माँझी ने जब खाकी कपडे वालों को पगडंडी के रास्ते से पहाड़ी चढ़कर अपने गाँव पहाड़पुर की तरफ आते देखा तो उसने फौरन तीर-कमान सँभाल ली और एक पेड की आड में हो लिया।

रमना का और उसके कबीले वालों का तजुर्बा यही था कि यह खाकी कपडे वाले सरकारी अफसर कभी-कभी नेक इरादे से उनके गाँव का रुख नही करते। कभी लगान माँगने आ जाते हैं, कभी वोट, कभी शराब की भट्टियों की तलाश में उनकी झोपडियों की तलाशी लेने आते हैं। एक बार तो वह उन सबका नाम, जात, कबीला, भाषा सब लिखकर ले गए थे। मर्दुम शुमारी हो रही है। रमना माँझी ठहरा एक सीधा-सादा आदिवासी। वह नहीं जानता था कि मर्दुम शुमारी क्या होती है। लेकिन वह इतना जरूर जानता था कि वह खाकी कपडे वाले अफसर हमेशा कुछ लेने ही आते हैं। उन्हें कुछ देने कभी नहीं आते। और कुछ नहीं तो पहले गोरी चमडी वाले आते थे और उनके फोटो ही खींचकर ले जाते थे। काले-काले डिब्बों में फोटो के साथ उनकी आत्मा भी खिंचकर गोरे लोगों के साथ चली जाती थी। और आदिवासी अपने-आपको बेजान और बेरूह-सा महसूस करते थे। यहाँ तक कि उन काले डिब्बों के जादू के तोड के लिये उन्हें महुआ का एक पूरा लोटा पीना पडता था। उसके बाद ही उनकी जान और उनकी रूह उनके बदन में वापिस आती।

रमना को वह दिन याद था जब गोरी चमडी वाले काले-काले डिब्बे लिये राजापुर में आदिवासी लोक-नृत्य के फोटो लेने आये थे। वह

कर रहा है—क्यों ? बेटा, क्यों ? जैसे उसका सबसे छोटा बच्चा तुतलाकर उससे पूछ रहा है—क्यों बाबा ?

मौत की हिचकी के साथ उसके मुँह से एक ही शब्द निकला :

"क्यों ?"

मगर खून से रंगीन बर्फ में टकराकर एक भरती हुई आवाज में दुहराया हुआ यह सवाल जिन्दा हो गया।

"क्यों ?"

बर्फ से ढकी हुई सारी पहाड़ियाँ इस सवाल से गूंज उठीं :

"क्यों ?"

शान्त असीम नीला आकाश, जो भारत से लेकर चीन तक छाया हुआ था, इस सवाल से गूंज उठा और उसमें उड़ती हुई फड़ाकुलों की डार, जो हिमालय के बर्फानी जाड़े से बचने के लिए पेकिंग की ओर लौट रही थी, इस सवाल की चोट से फड़फड़ा उठी।

चट्टान और सपना

रमना माँझी ने जब खाकी कपड़े वालो को पगडंडी के रास्ते से पहाड़ी चढ़कर अपने गाँव पहाड़पुर की तरफ जाते देखा तो उसने फौरन तीर-कमान सँभाल ली और एक पेड की आड़ मे हो लिया।

रमना का और उसके कबीले वालों का तजुर्बा यही था कि यह खाकी कपडे वाले सरकारी अफसर कभी-कभी नेक इरादे से उनके गाँव का रुख नही करते। कभी लगान माँगने आ जाते है, कभी वोट, कभी शराब की भट्टियों की तलाश मे उनकी झोपडियो की तलाशी लेने आते हैं। एक बार तो वह उन सबका नाम, जात, कबीला, भाषा सब लिख-कर ले गए थे। मर्दुम शुमारी हो रही है। रमना माँझी ठहरा एक सीधा-सादा आदिवासी। वह नही जानता था कि मर्दुम शुमारी क्या होती है। लेकिन वह इतना जरूर जानता था कि वह खाकी कपडे वाले अफसर हमेशा कुछ लेने ही आते है। उन्हे कुछ देने कभी नही आते। और कुछ नही तो पहले गोरी चमडी वाले आते थे और उनके फोटो ही खीचकर ले जाते थे। काले-काले डिब्बो मे फोटो के साथ उनकी आत्मा भी खिचकर गोरे लोगो के साथ चली जाती थी। और आदिवासी अपने-आपको बेजान और बेरूह-सा महसूस करते थे। यहाँ तक कि उन काले डिब्बो के जादू के तोड़ के लिये उन्हें महुआ का एक पूरा लोटा पीना पड़ता था। उसके बाद ही उनकी जान और उनकी रूह उनके बदन मे वापिस आती।

रमना को वह दिन याद था जब गोरी चमडी वाले काले-काले डिब्बे लिये राजापुर मे आदिवासी लोक-नृत्य के फोटो लेने आये थे। वह

त्योहार का दिन था। उस दिन रम्भा कितनी सुन्दर लग रही थी। उसका काला-चमकीला बदन बिना चोली के सफेद साड़ी में कसा हुआ ऐसा लगता था जैसे कमान से तीर निकलने ही वाला हो। रम्भा के गाँव में झूमर नाच हो रहा था। एक तरफ दस कुमारियाँ थी, दूसरी तरफ दस जवान थे। कुछ जवान हाथ में ढोल लिए नाच रहे थे। कुछ ऐसे ही ढोलक की ताल पर थिरक रहे थे। कुमारियाँ नाच-नाच के लहरियें बना रही थी। वह नाच नहीं रही थीं, पानी की तरह वह रही थी। समुन्दर की लहरों की तरह खेल रही थीं। उनके कदम से कदम, कंधों से कंधे मिले हुए थे। उन्होंने हाथ एक-दूसरे की कमर में डाल रखे थे। उन सबके साथ रम्भा जब झुकती थी तो उसके सुडौल कूल्हों पर नजर ठहर जाती थी। फिर जब वह सबके साथ सिर उठाती थी तो उसके सीने का उभार देखकर रमना का दिल धड़क उठता था। रम्भा के काले और तेल से चमकते हुए बालों में एक सफेद फूल लगा था, जिसको देखकर रमना के मन में न जाने कितने अरमान खिल उठे थे।

नाच दूसरे गाँव वालों का था। रमना वहाँ एक मेहमान की हैसियत से था। मगर जब उससे न रहा गया तो वह भी अपनी ढोलक उठाकर मैदान में कूद पड़ा। पहले तो कुमारियाँ एक अजनबी को इस तरह नाचते देखकर ठिठकी, फिर रम्भा ने एक अन्दाज से कहा—"आने दो, इस पहाड़पुर वाले को तो अभी थकाये देते हैं।"

ढोलक की लय तेज हो गई। रमना को गले में पड़ी हुई ढोलक पर थाप भी देनी थी और नाचना भी था। लड़कियों का जवाब लड़के देते थे और लड़कों का जवाब लड़कियाँ। रमना ढोलक पर थाप दे रहा था पर उसकी नजर रम्भा पर थी। अब उसने पास से देखा कि रम्भा की काली-काली बड़ी-बड़ी आँखों में काजल लगा है और जब वह हँसती है तो उसके गालों में गड्ढे पड़ जाते हैं। रमना ने निडरता से रम्भा की आँखों में आँखें डालकर ढोलक पर एक तेज लय बजाई और आँखों में रम्भा को इशारा किया कि अब इसका जवाब दे। रम्भा के नाचने की लय भी तेज हो गई। और फिर रमना को ऐसा लगा कि

वह है और रम्भा है और उसकी ढोलक की तेज होती हुई लय है। और वह दोनों नाच की डोर में बँधे हुए है। और कोई नहीं है। रम्भा के गांव वाले नहीं है। उसके साथ की नाचने वाली कुमारियाँ नहीं है। ढोलक बजाकर नाचने वाले नौजवान नहीं हैं। उसकी तरह पहाड़पुर से आये हुए मेहमान भी नहीं है। न उसको थकान मालूम हो रही थी, न टोनक का बोझ। वह सख्त जमीन पर नहीं नाच रहा था। उसके कदम तो बादलों पर पड़ रहे थे और उसका सिर आसमान को छू रहा था।

और उसी वक्त एक गोरी चमड़ी वाले ने अपने काले-काले डिब्बे का एक बटन दबाया और रमना को ऐसा लगा जैसे उसकी और रम्भा की आत्माएँ खिंचकर उस काले डिब्बे में कैद हो गई हो। उसके कदम बादलों से जमीन पर आ रहे। जमीन सख्त थी और कितने ही नुकीले पत्थर उसमें से झाँक रहे थे। रमना ने देखा कि उसके तलुए लहू-लुहान हो चुके है। एकदम उसे बड़ी थकान महसूस होने लगी। उसने देखा कि रम्भा का भी साँस फूल गया है। अब कुमारियों के कदम से कदम नहीं मिल रहे थे। एक-एक करके सब भाग गई। और फिर रमना मांझी भी अपनी ढोलक लेकर एक तरफ बैठ गया।

"क्यों, डांस क्यों बन्द कर दिया ?" काले-काले डिब्बे वाले गोरे ने उससे कहा—और जब सबने अपने जख्मी पैरों की तरफ इशारा किया तो उनके पैरों का भी फोटो खींच लिया। और अब उनके पैरों में से भी जैसे सारी जान निकलकर काले डिब्बे में बन्द हो गई।

"क्या तुम अपना फोटो देखना पसन्द करोगे ?" खाकी कपड़े वाले ने कहा और जब रमना ने 'हाँ' कहने के लिए जोर-जोर से अपना सिर हिलाया तो फोटो खींचने वाले ने काले डिब्बे के अन्दर हाथ डाला (और बिल्कुल जैसे जादूगर टोप में से खरगोश निकालते हैं) एक तस्वीर बाहर निकल आई। फोटोग्राफर ने तस्वीर रमना की तरफ बढ़ाते हुए कहा—"मेरा कैमरा पोलराइड है, बस एक मिनट में तस्वीर तैयार हो जाती है।"

रमना ने तस्वीर हाथ में ली तो देखा, उसमें न सिर्फ उसकी बल्कि

रम्भा को भी आत्मा खिंच आयी थी। रमना का ढोल उठा हुआ था, उसका एक कदम जमीन पर था, दूसरा हवा में। वह नाच रहा था और उसके साथ रम्भा नाच रही थी। और तस्वीर के कागज पर दोनों की तस्वीर आई थी। यह क्या जादू था जिसने रमना और रम्भा को हमेशा के लिए इकट्ठा कर दिया था? रमना को डर था कि काले-काले डिब्बे वाला उससे तस्वीर वापिस न मांग ले। वह उसकी आंख बचाकर वहाँ से भाग आया। दोनों बस्तियों के बीच जो चार कोस का फासला था वह उसने भागकर ही तय किया था। यहाँ तक कि पहाड़ पर भी वह भागता हुआ चढ़ता चला गया। उसने अपने झोंपड़े में पहुँच कर ही दम लिया। वहाँ जाकर उसने एक बार फिर तस्वीर को देखा। सचमुच रम्भा उसमें नाच रही थी, मुस्करा रही थी। ऐसा लगता था कि अभी बोल पड़ेगी। उसने तस्वीर को दीवार पर टाँग दिया। इस ख्याल से कि किसी की नजर न लगे। उसने उसके ऊपर अपना फटा हुआ कम्बल डाल दिया। फिर काले डिब्बे के जादू के तोड़ के लिए उसने एक लोटा महुए का हलक में उड़ेल लिया।

उसका इरादा था कि अबकी फसल पर उसके खेत में जितना अनाज होगा उसे बेच कर वह अपने झोंपड़े की मरम्मत करायेगा। नई छत डालेगा। फर्श को गोबर से लीपेगा और लकड़ी के नये किवाड़ लगवायेगा, जिन पर फूल और पछी खुदे हुए होंगे। (जैसे अपने मुखिया के घर में देखे थे।) और जब उसका घर रम्भा के रहने लायक हो जायेगा तो वह जाकर रम्भा के बाप से मिलेगा और उससे शादी की बात करेगा।

मगर उस साल उसके खेत में फसल ही नहीं हुई—न उसके खेत में, न उसके गाँव वालों के खेत में। रम्भा के गाँव में भी यही हाल था। सुनने में आया कि सारे देश में सूखा पड़ा था। बारिश की एक बूंद तक आसमान से नहीं गिरी थी। आसपास के ताल-तलैया और कुएँ सब सूख गये थे। बड़े-बूढ़े कहते थे कि देवी-देवता उनसे नाराज हो गए हैं। रमना की समझ में यह बात नहीं आती थी। उसको याद नहीं आता था कि उसने या उसके गाँव वालों ने कोई ऐसा पाप किया

हो जिसकी ऐसी सजा मिले। रमना का गांव पहाड़ी पर था। इन्हें पहले भी पहाड़ी के नीचे जो कुआं था वहां से पीने का पानी भर कर ऊपर लाना पड़ता था, मुश्किल से पीने और खाना पकाने के लिए पानी पूरा होता था। पूरा साल हो गया था, गांव में कोई नहा नहीं पाता था।

ऐसी हालत में रम्भा जैसी सुन्दर, कोमल लड़की से शादी का ख्याल भी वह कैसे कर सकता था। वह अक्सर सोचता—"वह तो मेरे बदन की बू से ही दूर भाग जायेगी···" जब रम्भा की बात उसे बहुत सताती तो वह रम्भा की तस्वीर पर से कम्बल हटाकर देख लेता। मगर तस्वीर को भी स्नान की जरूरत होती है। रमना ने देखा कि तस्वीर में उसके और रम्भा के शरीर पर मैले धब्बे-से पड़ते जा रहे हैं।

दो-चार महीने तो रमना और उसके गांव वालों ने जो अनाज घर में भर रखा था उसी पर गुजारा किया। सबने ढोर-डगर, बरतन-भांडे बेचने शुरू किये। बाजार में अनाज के भाव तेजी से बढ़ रहे थे। चावल अब ढाई रुपये सेर हो गया था। उसे वह अब सपने में खा सकते थे। गेहूंओं के बजाय वह बाजरा और फिर बाजरे के बजाय ज्वार खाने लगे। मगर घर के बर्तन भी कितने दिन साथ देते। आखिर खत्म हो गये और एक दिन वह आया जब रमना मांझी के घर में न अनाज था, न कोई ऐसी चीज जिसे वह बेच सके। वह पानी भरने भी नहीं गया सोचा, जब खाने को नहीं है तो पानी भी क्यों पीऊं? घर में ही फटी चटाई पर पड़ा रहा। शाम को उसके पड़ोसी धीसू काका ने आकर उसे उठाया। कहने लगा—"रमना, आज मैं पानी भरने गया तो मालूम हुआ कि वह कुआं भी सूख गया। मैंने सोचा, अगले गांव चलूं और वहां से एक घड़ा पानी ले आऊं। वहां गया तो क्या देखता हूं कि एक धर्मात्मा ने लंगर खोल रखा है। उसका नाम मानव कल्याण मंडल है, हरेक को वहां एक वक्त का खाना मुफ्त मिलता है कभी तो रोटियां, कभी खिचड़ी, कभी दलिया, सुना है किसी-किसी दिन हलुआ-पूरी भी देते हैं।"

रमना के मुंह में पानी भर आया। वह उठकर बैठ गया और

बोला—"काका ! कल मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। इस वक्त एक कटोरा पानी का तो देना।"

इस तरह अगले दिन रमना मांझी पहाड़ी से नीचे ही नहीं उतरा, अपनी इन्सानियत की सीढी से भी नीचे उतर आया। उसके कबीले में आज तक किसी ने भीख का टुकड़ा नहीं खाया था। आज वह लंगर-खाने में जाकर दो रोटियों या मुट्ठी-भर खिचड़ी के लिए हाथ फैलायेगा। वह चल रहा था मगर शर्म से उसकी निगाहें झुकी हुई थी। लेकिन फिर उसने देखा कि उसी सड़क पर उस जैसी कितनी ही छायाएँ उसी तरफ चल रही है जिधर मानव-कल्याण की खिचड़ी दी जाती है, मगर उसके बदले में उसकी इज्जत खरीद ली जाती है। रमना ने आँखें उठाईं और पीछे मुड़कर देखा। सब उसके कबीले वाले थे और सबकी निगाहें झुकी हुई थी।

'मानव-कल्याण मंडल' का लंगर क्या था, मेला-सा लगा हुआ था। हजारों की भीड़ थी। नहाई-धोई, साड़ियाँ पहिने, माथे पर बिन्दी लगाये औरतें लंगर का इंतजाम कर रही थी। पुलिस वाले भूखों को लाइन में बैठने को कह रहे थे। जो नहीं समझते थे उन्हें वह लाठियों से समझा रहे थे। एक लाइन में रमना बैठ गया। इधर-उधर नजर की तो देखा, सब लोग बरतन सामने रखे इन्तजार कर रहे है। कोई एल्मोनियम का पुराना प्याला लाया है तो कोई मिट्टी की ढोबरी उठा लाया है। किसी ने पत्तों का दोना बना रखा है। किसी ने अपने दो हाथों को ही जोड़कर फैला दिया है।

"खिचड़ी कब मिलेगी ?" रमना ने घीसू काका से पूछा।

"अभी तो कम से कम दो घंटे हैं। मगर तीन घंटे भी हो सकते हैं।"

रमना ने सोचा, दो घंटे गाँव से यहाँ आने में लगे। दो-तीन घंटे इन्तजार करना पड़ेगा। फिर खाकर वापिस जाने में पहाड़ चढ़ना पड़ेगा। उसमें भी तीन घंटे लगेंगे, इतनी देर में तो कितना ही काम कर सकता हूँ। लकड़ी काट सकता हूँ, पत्थर तोड़ सकता हूँ···

इतने में एक कोने में कुछ शोर-गुल हुआ तो उसने देखा वर्दी पहने

जाते हुए मिले। बूढ़े, बच्चे और औरतें, कुछ उस जैसे जवान भी। सबको दो रोटियों का लालच लंगर की तरफ खींचे लिये जा रहा था। रमना की निगाहें अब भी नीची थीं। वह नहीं चाहता था कि वह जो जा रहे थे उनको उसकी निगाहों से शर्मिन्दा होना पड़े।

वह चलता रहा, चलता रहा। यहाँ तक कि अपने गाँव की तरफ से लौटने के बजाय किसी और ही तरफ निकल आया। यहाँ उसने देखा कि सैंकड़ों आदमी जवान, अधेड़ उम्र के, बच्चे, औरतें—कुदालें हाथ में सम्भाले, टोकरियाँ सिर पर उठाये मिट्टी काट रहे हैं और सतह ऊँची करके बाँध बना रहे हैं।

वह ठहर गया। उसने किसी से पूछा—"यह क्या है?"

"यह हेवी मेन्यूअल (Heavy Manual) है।"

"वह क्या होता है?"

"काम—सख्त मेहनत करनी पड़ती है, तुम करोगे?"

रमना यह सुनकर मुस्कराया। उम्र भर उसने सख्त मेहनत करने के अलावा किया भी क्या था? पहाड़ी पर फसल उगाना कोई आसान काम नहीं था।

"खाना मिलेगा?"

"मजदूरी मिलेगी। डेढ़ रुपया रोज। राशन खरीद सकते हो।"

रमना ने अपनी फटी हुई कमीज उतारी और एक फावड़ा लेकर मिट्टी काटना शुरू कर दिया। एक बरस से उसने हल नहीं चलाया था। खेत में बुवाई नहीं की थी, निलाई नहीं की थी, कटाई नहीं की थी। अब मिट्टी काटते हुए उसने सोचा—"मेरी भुजाओं में अब भी ताकत है।"

उस दिन से दिन-भर वह मिट्टी काटता, शाम को मजदूरी करके पानी भरने जाता। नीचे के गाँव में एक ट्यूबवेल लग गया था। वहाँ शाम को बड़ी भीड़ होती। रमना भी लाइन में खड़ा हो जाता और सोचता रहता कि कब यह जादू का कुआँ उनके गाँव में भी लगेगा। फिर घड़ा भरकर वह तारों की रोशनी में पगडंडी पर चलता हुआ अपने गाँव पहुँचता। वहाँ जाकर खाना पकाता, खाता। आधी रात

होने को आती तब कहीं सोने की नौबत आती। फिर सपने मे चुपके से रम्भा उसके पास आती और अब वह ऐसी ही होती जैसी पन्द्रह महीने पहले थी। और वह रमना के साथ नाचती और नाचते-नाचते उनके शरीर एक-दूसरे को स्पर्श करते, यहाँ तक कि एक-दूसरे मे घुल-मिल जाते और फिर रमना की आँख खुल जाती।

और फिर एक दिन उसने सुना कि रम्भा के गाँव मे भी ट्यूबवेल लग गया है। अब उसे मालूम हो गया था कि आद् के कुओं का असली नाम क्या है। फिर सुना कि ट्यूबवेल लगने से राजापुर मे जिन्दगी की एक नई लहर दौड़ गई है।

अब यहाँ से कोई लगर मे खाना माँगने नही जाता। रमना का जी चाहता कि शाम को वहाँ जाये और रम्भा को दूसरी कुमारियों के साथ ट्यूबवेल पर पानी भरते हुए देखे। वह सोचता, रम्भा सिर पर पानी से छलकता हुआ गागर लेकर चलती होगी तो कितनी अच्छी लगती होगी। मगर फिर वह यह खयाल करके रुक जाता कि उनके गाँव मे तो अब भी कोई कुआँ नही है। उसका खेत उसी तरह बंजर और वीरान पडा है। उसे पीने का पानी भी पाँच मील दूर से लाना पडता है। मजदूरी से जो मिलता है उसमे उसका अकेले का राशन भी मुश्किल से पूरा पड़ता है। कभी-कभी तो उसको यह लगता कि पहाडपुर गाँव इतना छोटा है (सब मिलकर पचास झोपडे और कोई ढाई सौ आदमी होगे) कि दुनिया उनके अस्तित्व को ही भूल गई है। फिर वह सोचता कि अगर दुनिया को हमारी परवा नही तो मैं भी क्यो उसका काम करूँ? दूसरे गाँव मे बाँध-पोखर क्यों खोदूँ? दूसरों की सडके क्यो बनाऊँ? उनके लिए कुएँ क्यों खोदूँ जब मेरे अपने गाँव मे···

यही सोचकर वह अगले दिन काम पर नही गया। कुदाल और फावड़ा लेकर अपने खेत मे कुआँ खोदता रहा। शाम तक दो हाथ की गहराई तक उसने खोद डाला। मगर उसके बाद सख्त पथरीली जमीन थी। उसकी कुदाली भी कुद पड गई। शाम को थक-हारकर वह बिना खाये-पिये चटाई पर पडकर सो गया। सपने मे उसने देखा

कि जहाँ उसने गढा खोदा था, पानी का सोता उबल रहा है । सुबह होते ही वह भागा-भागा वहाँ पहुचा तो देखा कि गढा वैसे का वैसा ही पड़ा है। गढे के तले मे सूखी काली चट्टान झाँक रही थी और उसी को मुँह चिढा रही थी।

गाँव वालो मे से कुछ 'हेवी मेन्युअल' काम गये हुए थे, कुछ मानव-कल्याण मण्डल के लंगर मे खाना माँगने । सि० रमना ही था जो पहाडी की चोटी पर खड़े हुए इमली के पेड पर पत्थर मार-मारकर इमलियाँ गिरा रहा था। क्योंकि आज उसके घर मे खाने को कुछ भी नहीं था। उस वक्त उसने खाकी कपडे वाले को पगडंडी के रास्ते अपने गाँव की तरफ आते देखा। जो पत्थर वह उछालने वाला था वह उसके हाथ मे ही रह गया। फिर पत्थर को जमीन पर फेंककर वह अपने झोंपडे की तरफ भागा और इन अनजाने दुश्मनो के खिलाफ गाँव की हिफाजत के लिए अपना तीर-कमान सम्हाल लिया।

वह तीन आदमी थे। तीनों खाकी कपडे पहने हुए, एक के हाथ मे एक छतरी थी जिसे वह बार-बार जमीन पर मार रहा था। कभी-कभी रुककर वह कोई पत्थर उठाकर उसे देखता था। फिर पत्थर को जमीन पर फेंक देता। मगर किसी-किसी पत्थर को वह जेब मे भी रख लेता था।

"मैं जानूँ सोने या लोहे या कोयले की खोज में आये है।"

दरख्त के पास से निकले तो रमना ने देखा कि नौजवान आदमी है। धूप मे पहाड़ी चढने से हाँफ गए। उनके पास कोई हथियार नही था। कोई सरकारी कागज नही था। किसी का वारंट या समन नही था। वोट माँगने वालो का भोंपू भी नहीं था। सिर्फ एक की बगल में एक नक्शा था जिसे ऊपर-नीचे कर उन्होंने जमीन पर फैला दिया और फिर नौजवान ने अपनी छडी से उस तरफ इशारा किया जिधर रमना का खेत था। और खेत मे वह गढ़ा था, जो रमना ने खोदा था।

थोड़ी देर मे वे लोग वहीं गढे के किनारे खड़े थे। अब रमना भाडी मे रहा न गया। भागा हुआ वहाँ पहुँचा। तीर-कमान अब भी उसके हाथ मे था।

"यह खेत मेरा है।" उसने चिल्लाकर कहा।

"बड़ी खुशी की बात है।" छड़ीवाले नौजवान ने जवाब दिया। "मगर तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि इस जगह पानी निकल सकता है ?"

"मुझे कुछ नहीं मालूम।" रमना बोला। "मैं तो अपनी जमीन पर कुआँ खोद रहा था। मगर रास्ते में यह चट्टान आ गई है। अब पानी कहाँ से निकलेगा ?"

"इसी चट्टान के नीचे पानी है।" नौजवान ने अपनी छड़ी से जमीन कुरेदते हुए कहा।

"होगा। मगर चट्टान को कौन हटा सकता है ?"

"इन्सान हटा सकता है। तुम लोगों को तो सैकड़ों बरस पहले भी इसकी तरकीब मालूम थी। जब तुम चट्टान पर पहले जलती हुई लकड़ियाँ डालकर उसको गरम करते थे। फिर पानी डालकर उसको ठंडा करते थे और इसी तरह चट्टान टूटकर चटख जाती थी। मगर यही काम अब डाइनामाइट से हो सकता है। बोलो, अपनी जमीन पर कुआँ खोदने दोगे ?"

रमना ने कुछ देर सोचा—"और कहीं पानी नहीं निकल सकता ?"

"नहीं, यही जगह है जहाँ से पानी निकलेगा।"

"अच्छा, मुझे मंजूर है।"

"मगर एक शर्त पर।" इंजीनियर ने कहा।

"वह क्या ?" रमना ने पूछा।

"यह कुआँ सबके लिए होगा। सब गाँववालों को यहाँ से पानी लेने का अधिकार होगा।"

फिर कुछ सोचकर रमना ने कहा—"मुझे मंजूर है।"

"तो फिर ठीक है ना, कल काम शुरू हो जायेगा।" छड़ी वाले नौजवान ने कहा।

"पहले एक बात बताओ।" रमना ने कहा—"इस गाँव को तो भूल ही बैठे थे। तुम्हें इसका नाम-पता किसने बताया ?"

"हमें राजापुर में मालूम हुआ। हम वहाँ ट्यूबवेल का

करने गये थे। वहाँ एक लड़की ने पहाड़पुर के बारे में बताया।"

"क्या नाम था उसका ?" रमना ने पूछा और फिर आप-ही-आप मुस्करा दिया। उसको जवाब मालूम था।

नौजवान इंजीनियर ने बताया—"रम्भा।"

उस रात रमना को खुशी के मारे नींद नहीं आई। सुबह वह सवेरे ही उठ गया और जल्दी से अपनी ज़मीन पर पहुँच गया। इंजीनियर वहाँ पहले से मौजूद थे।

सूराख में उन्होंने डाइनामाइट रखी, पलीता लगाया, एक धमाका हुआ और हवा में धुआँ फैल गया।

धुआँ दूर हुआ तो रमना ने देखा चट्टान के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। उसको ऐसा लगा कि दुश्मन खत्म हो गया। कुदाल लेकर लगा फौरन पत्थरों को तोड़ने। गढा एक फुट और गहरा हो गया। मगर चट्टान फिर वैसी-की-वैसी ही मौजूद थी। लोहे की तरह सख्त और काली।

"अब क्या करेंगे ?" उसने घबराकर इंजीनियर से पूछा।

"फिर डाइनामाइट लगायेंगे।" इंजीनियर ने जवाब दिया। जब तक पानी नहीं निकलेगा, यही करते रहेंगे। लो, इस बार तुम डाइनामाइट लगाओ।"

रमना ने चट्टान में सूराख करके उसमें डाइनामाइट रखते हुए सोचा—"इन्सान की बुद्धि भी कितनी शक्तिवान है। चट्टान तक के टुकड़े-टुकड़े कर सकती है।"

इस बार पलीते को उसने ही आग लगाई, थोड़ी देर तब तो पलीते के जलने की सरसराहट होती रही। फिर एक धमाका हुआ। रमना ने सोचा—"यह धमाका मैंने किया है, रमना माझी ने।"

इस तरह बीस बार चट्टान में डाइनामाइट लगानी पड़ी। हर बार रमना कुदाल और फावड़ा लेकर गढे को और गहरा करता, मगर फिर उसके नीचे से चट्टान अपना सिर निकालकर उसका मुँह चिढ़ाती।

यह चट्टान थी या चुड़ैल ?

कुआँ खोदते-खोदते एक महीना हो गया। गढा अब तीस फुट

गहरा हो चुका था। और चट्टान वैसी-की-वैसी मौजूद थी। अब तो इंजीनियर भी घबरा गये थे। मगर वह छड़ीवाला नौजवान अब भी कहे जा रहा था—"पानी यहीं है। साइन्स गलत नहीं हो सकती।"

इस बार रमना ने चारो कोनो पर दो-दो सूराख किये और हर सूराख मे पहले से दुगनी डाइनामाइट भरी। अब वह इस चट्टान से तंग आ गया था। उसने फैसला कर लिया था कि अगर अबकी बार भी चट्टान अपनी जगह से नही हटी तो वह कुआँ खोदना बन्द कर देगा। और इंजीनियरो को भी अपनी जमीन से बाहर हकाल देगा। भगवान को यही मंजूर है कि वे प्यासे मरें और एक बूँद पानी उन्हें न मिले तो फिर इतनी मेहनत करके हल्कान होने से फायदा ?

पलीते मे आग लगा दी गई। आग सरसर करती हुई आगे बढती जा रही थी और रमना पीछे हटता जा रहा था। थोड़ी देर तक खामोशी रही। रमना ने समझा पलीता बुझ गया है। फिर आग लगानी चाहिए। वह कुएँ की तरफ बढा ही था कि एक जबरदस्त धमाका हुआ। एक इंजीनियर ने रमना को पीछे की ओर खीच लिया। कुएं में से पहले धुएँ का एक बादल निकला फिर पत्थर उडकर आये।

एक पत्थर रमना के पैर के पास ही आकर गिरा। इंजीनियर चिल्लाया—"देखो रमना ! देखो, आखिर जीत हुई ना हमारी ?"

रमना ने पत्थर को गौर से देखा। पत्थर पानी से गीला था।

पागलों की तरह चिल्लाता हुआ रमना कुएँ की सूराख तक पहुँचा। "पानी ! पानी !!" अंदर झांका तो देखा कि कुएँ की तह मे पानी झिलमिला रहा है। जैसे जमीन के अन्दर तारे जगमग-जगमग कर रहे हों।

पहाड़पुर में कुआँ बनने की खुशी मे गाँववालो ने एक उत्सव मनाने का फैसला किया।

"राजापुर न्योता लेकर कौन जायेगा ?" एक बूढ़े ने सवाल किया और फिर मुस्कराकर रमना माझी की तरफ देखा।

"मैं जाऊँगा।" रमना माझी ने कहा।

जाने से पहले रमना ने कुएँ से पानी भरा। उसने अपने सब कपडे